॥ गगनभेदी ॥

मूल मराठी
वसंत कानेटकर

रूपान्तर
प्रशांत पांडे



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक : 442

गगनभेदी
(नाटक)

वसंत कानेटकर

प्रथम संस्करण : 1985

मूल्य : 28.00 रुपये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003

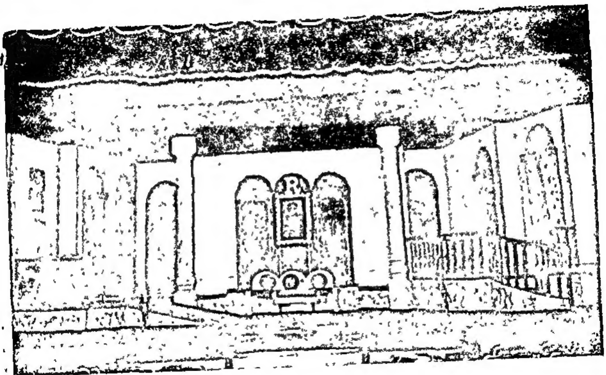
मुद्रक
स्वस्तिक प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली

मुखपृष्ठ :
मोहन वाघ, रविन्द्र इंगले
एवं कमल शेडगे

GAGANBHEDI (Drama) by Vasant Kanetkar. Published by Bharatiya Jnanpith, 18 Institutional Area, Lodhi Road, New Delhi. Printed by Swastik Printers, Shahdara, Delhi.
First Edition 1985 Price : Rs. 28.00



जगद्वंदनीय नाटककार
विलियम शेक्सपियर
की देदीप्यमान प्रतिभा को अर्पित—



पहला अंक :   ललित महल का दृश्य



पहला अंक, पहला दृश्य : विक्रम (यशवंत दत्त) और जाई (वंदना गुप्ते)



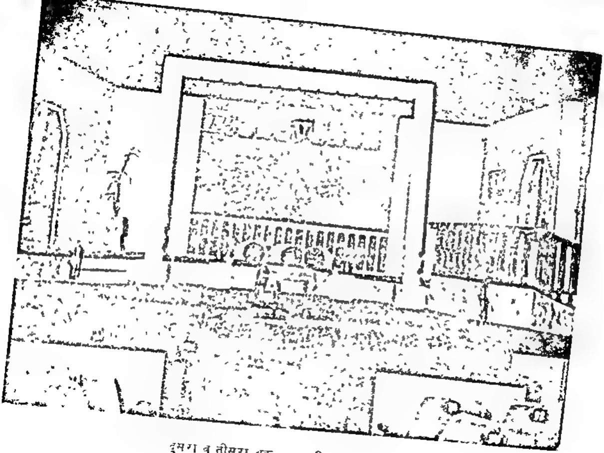
पहला अंक, दूसरा दृश्य : प्रियरंजन (जगन्नाथ कांदवगावकर), दयाल (मोहन मुंगी), ललिता गौरी (वैजयंती चिटणीस) तथा विक्रम (यशवंत दत्त)



पहला अंक, दूसरा दृश्य : ललिता गौरी (वैजयंती चिटणीस) एव विक्रम (यशवंत दत्त)



पहला अंक, दूसरा दृश्य : जाई (वंदना गुप्ते), विक्रम (यशवंत दत्त) तथा बलराज (नरेन चह्वाण)



दूसरा व तीसरा अंक   रूपविला का दृश्य



तीसरा अक, तीसरा दृश्य : रूपाली (अश्विनी भावे), विश्रम (यशवत दत्त)
तथा जाई (वदना गुप्ते)

दूसरा अंक : विक्रम (मधुकर तोरडमल) और जाई (वंदना गुप्ते)

तीसरा अंक : विक्रम (मधुकर तोरडमल) और रूपाली (अश्विनी भावे)

गैंगनभेदी नाटक का शुभारंभी प्रस्तुतिकरण : बम्बई की 'चन्द्रलेखा' संस्था द्वारा शनिवार दिनांक 9 अक्तूबर 1982 की संध्या को छः बजे गोल्डन थियेटर, गोल्डन लेन, लंदन ई. सी. 1 में सादर खेला गया।

निर्देशक : मधुकर तोरडमल। नेपथ्य/प्रकाश : मोहन वाघ। रंगभूषा : कृष्ण बोरकर। ध्वनि : गणेशगोरे। वेशभूषा : पेंमसन मेन्सवेअर। अनिल दलवी। लक्ष्मण गोपाल। प्रस्तुति सहायक : हनुमानशिंदे। व्यवस्थापक : मनोहर कदम। पाश्र्व संगीत : अनंत अमेंबल।

कलाकार : विक्रम : मधुकर तोरडमल। बलराज : नरेन चह्वाण। दयालजी : मोहनमुंगी। प्रियरंजनदास : जगन्नाथ कांदलगांवकर। उदय : उपेन्द्र दाते। बालाराम : मधुकड्डू। ललितागौरी : उषा लिमये। जाई : वंदना गुप्ते। रूपाली : अश्विनी भावे।

निवेदन

विलियम शेक्सपियर एक विश्व-वंदनीय नाटककार हैं। उनकी चार दुखांतिकायें—हेमलेट, मैक्बेथ, ऑथेल्लो और किंग लियर—महाकवि की प्रतिभा का चिद्विलास है। संसार का हर महान् अभिनेता इन भूमिकाओं को अभिनय में उतारने के लिये लालायित रहता है और अपनी सारी कलात्मक शक्ति लगा-कर, उन्हें साकार रूप देने में गौरवान्वित अनुभव करता है। साथ ही संसार की हर भाषा के नाटककार, शेक्सपियर की इन कलाकृतियों को अपनी-अपनी भाषा की सरसता में अंकित करने का भरसक प्रयास करते हैं। नाट्य काव्य संवाद, व्यक्तिचित्रण, रसास्वादन, मन मंथन और व्यक्ति तथा नियति के बीच चलने वाले विरोधों पर भाव-विह्वल कर देने वाले जीवन-भाष्य, हृदय को छू लेने वाली उक्तियाँ, इत्यादि की अभिव्यक्ति में शेक्सपियर अद्वितीय हैं।

विद्यार्थी जीवन में शेक्सपियर से मेरा प्रथम परिचय हुआ और तदोपरांत जैसे-जैसे मुझे शेक्सपियर के विविध कला-गुणों तथा उनकी समर्थता के दर्शन होते गये वैसे-वैसे उनके प्रति मेरी भक्ति गहरी और उत्कट होती गयी। अभी तक लिखे गये मेरे लगभग तीस नाटकों पर शेक्सपियर के प्रभाव की गहरी छाप दिखाई पड़ती है, भले ही उसका प्रमाण कहीं कम और कहीं अधिक हो। अपने इस गुरु ऋण से मुक्त होने का मेरा अल्प सा प्रयास है—यह 'गगनभेदी'। शेक्सपियर के दुखांत नाटकों के नायक गगनभेदी होते हैं इसलिए उनका प्रस्फुटन केवल नाटक के पात्रों को ही नहीं वरन् प्रेक्षकों को भी रोमांचित कर देता है। हेमलेट की नायिका ऑफिलिया हेमलेट के विषय में सहज ही कह जाती है—"वॉट ए ग्रेट माइन्ड इज हेयर ओवरथ्रोन!" शेक्सपियर की सभी दुःखान्तिकाओं के नायकों का मानसिक अंतरंग इस उक्ति में प्रकट हुआ है।

इन चार दुःखान्त नाटकों का अध्ययन करते हुए पिछले कई बरसों से मुझे यह आभास होने लगा कि भले ही देह से ये चार नायक और उनकी कहानियाँ भिन्न हैं किन्तु उनकी अंतरात्मा एक ही है। मुझे ऐसा लगा मानो इन चारों में 'खून का रिश्ता' है; उनके सुख और दुःख

का प्रकार एक है, वैसे ही, नियति के आह्वानों के साथ टक्कर लेते समय, उनकी वृत्ति और उनके अटल संकल्प समान हैं। इन सभी नायकों की प्रकृति हठीली है और अंतःकरण काव्यमय है। इसीलिए इस सामान्य ढंग से घिसटने वाली, कदम-कदम पर व्यवहार बनने वाली इस पेट-पालू संकीर्ण डेढ़ बालिश्त की दुनिया में उन्हें अपमानित होना पड़ता है, उनकी खुले आम खिल्ली उड़ाई जाती है। ये सभी नायक कभी न कभी पागलपन की सीमा छू लेते है और उनकी बदनसीबी के लिए किसी न किसी प्रमाण में जिम्मेदार होती है एक नारी—उस नारी के विविध रूप, उसकी तरह-तरह की बेवफाई, कभी माँ, कभी पत्नी, और कभी बेटी के रूप में। यह सब होते हुए भी ये सभी नायक स्वयं ही अपने दुर्भाग्य के शिल्पकार होते हैं।

हेमलेट, मेकबेथ, ऑथेल्लो और लियर ये शक्तिशाली चरित्र-चित्रण अवश्य हैं किन्तु मूलरूप से ये चारों मनोवृत्तियाँ हैं, साथ ही मानसिक अवस्थाएँ भी हैं। एक समय मन में यह विचार आया कि अगर ये चारों मन की भिन्न अवस्थाएँ हैं तो फिर ये किसी एक व्यक्ति के जीवन में भिन्न-भिन्न समय पर प्रकट भी हो सकती हैं। यह परागमन किसी एक व्यक्ति में भी संभव है। इस विचार पर मेरा मनमंथन होता रहा और मुझे इस अन्वेषण में, इन शोकात्माओं के जीवन-संघर्ष का एक प्रमुख सूत्र प्राप्त हुआ जिसे मैंने नाटक में गूंथा है। यह एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो जीवन भर एकाकी रहा, ध्वस्त रहा पहले अपनी माँ के कारण, फिर अपनी पत्नी की वजह से और अन्त में अपनी बेटी की···। इस सूत्र को गूंथते समय मेरे दिमाग में क्रमशः एक आकृति ने रूप लिया। पहले अंक में हेमलेट, दूसरे अंक में मेकबेथ तथा ऑथेल्लो और तीसरे अंक में किंगलियर, एक ही नायक के चित्रण में ये भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ बीतते समय के साथ साकार होती जाती हैं। यह सूत्र और इन आकृतियों के रेखाचित्र अपने मन में रखकर मैंने भारतीय पृष्ठभूमि में जिस नाट्य कृति को रचने का प्रयास किया, उसका ही नाम है 'गगनभेदी'। मेरा यह प्रयास कितना सफल हो पाया है यह तो इस क्षेत्र के विशेषज्ञ ही बता सकते हैं।

'गगनभेदी' नाटक का मराठी भाषीय पहला रंगमंच-प्रदर्शन, लंदन स्थित महाराष्ट्र मंडल संस्था द्वारा सुवर्ण महोत्सव समारोह के अवसर पर, लंदन के गोल्डन थियेटर में दिनांक 9 अक्तूबर 1982 को सम्पन्न हुआ था। उसके बाद इस नाटक को बम्बई की चंद्रलेखा नामक नाट्य संस्था ने रंगमंच पर खेलना प्रारंभ किया। नवंबर 1982 से यह नाटक मंच पर खेला जाने लगा और यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इन दो-तीन वर्षों में इस नाट्य संस्था ने महाराष्ट्र के विभिन्न शहरों में करीबन 300 बार यह नाटक खेला है और अभी भी इसे

मंच पर प्रदर्शित किया जा रहा है।

हिन्दी में भी इस लोकप्रिय नाटक को रूपांतरित कर प्रकाशित किया जाए यह इच्छा भारत की प्रसिद्ध संस्था भारतीय ज्ञानपीठ ने व्यक्त की और मैंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। अनुवाद का कार्य दोनों भाषाओं का उत्तम ज्ञान रखने वाले मेरे स्नेही श्री प्रशांत पांडे ने स्वीकारा और बहुत मेहनत से उसे सम्पन्न किया है। मैं उनका तथा भारतीय ज्ञानपीठ का बहुत आभारी हूँ। राष्ट्र भाषा में प्रकाशित होने वाली यह मेरी महत्त्वाकांक्षापूर्ण कलाकृति है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी नाटक-प्रेमीजन इसे पसंद करेंगे।

—वसंत कानेटकर

शिवाई, शरणपूर मार्ग
नासिक-422002



प्रथम अंक

प्रथम अंक

प्रथम प्रवेश

(राजेन्द्रनगर। इस नगर के प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान् शिवशंकर राजेन्द्र, जिनका हाल ही में स्वर्गवास हो चुका है, के परिवार का निवासस्थान, आलीशान ललितमहल की पहली मंजिल का दीवानखाना। सामने वाली दीवार के अतिविशाल महाद्वार से बाहर का बरामदा दिखाई देता है। उस बरामदे से परे बगीचे का हिस्सा दिख रहा है। एक उद्योगपति के निवास के योग्य उस हाल की सजावट शोभनीय प्रतीत हो रही है। संध्या का समय है। जब यवनिका उठती है उस समय रंगमंच पर कोई दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु पार्श्व में कहीं दूर से आमोद-प्रमोद के ठहाके और वाद्यवृन्द संगीत के स्वरों में मिश्रित कोलाहल अस्पष्ट-सा सुनाई देता है। जैसे ही रंगभूमि प्रकाशमय होती है, पार्श्व में किसी मोटरगाड़ी के रुकने की ध्वनि सुनाई देती है। उसे सुनते ही अंतःपुर से दो सेवक बड़ी हड़बड़ाहट के साथ बाहर भागे जाते हैं। कुछ ही देर में विदेश-यात्रा से वापिस आने वाले व्यक्ति का सामान सिर पर लादे, सूटकेस खींचते हुए या उठाए हुए वे मंच पर प्रवेश करते हैं और भीतर जाते हैं। जब अर्दली सामान उठा रहे हैं उस समय उन्हें आदेश देते हुए बलराज की आवाज भी सुनाई देती है। इस सामान की ढुलाई के बाद एक छोटा ब्रीफ-केस हाथ में लिये हुए विक्रम प्रवेश-द्वार तक पहुँचता है और वहीं अचानक रुक जाता है। वह बरामदे से ही पार्श्व से आने वाली हँसी-मजाक और मौजमस्ती की आवाजों का पता लगाने का प्रयत्न करता है। विक्रम तीस वर्षीय युवक है, सुन्दर, सुसंस्कृत और सुघड़ नौजवान। उसका मुखमंडल तेजस्वी है किन्तु उसपर बेचैनी छाई है और उदासी झलक रही है। आँखों में चमक है, वाणी है किन्तु दृष्टि खोई-खोई-सी है। वह कीमती सूट पहने हुए है। कुछ ही देर में वहाँ बलराज पहुँचता है। वह भी विक्रम की ही उम्र का है। विक्रम को वहाँ खड़ा देख, वह सहमकर हक्का-बक्का-सा होकर रुक जाता है। वह विक्रम से नाजुक और खूबसूरत है। वह कुर्ता और पैंट पहने है। उसके पैरों में चप्पलें हैं और दोनों हाथों में छोटी-छोटी अटैचियाँ हैं।)

बलराज : विक्रम, तुम्हारा सारा सामान, बैग और बैगेज तुम्हारे लिए विशेष रूप से सुसज्जित कमरे में पहुँचवाने के लिए कह दिया गया है। [illegible]'''

विक्रम : (अपनी ही धुन में दूर कहीं देखते हुए) बलराज, दोस्त! [illegible]

माजरा है ? यह दीपोत्सव—यह रोशनी किसलिए ? यह आर्केस्ट्रा··· यह सारी मौजमस्ती···रंगरलियां···यह सब क्यों ? क्या किसी पास-पड़ोस के बंगले में कोई लॉन-पार्टी चल रही है या आलीशान दावत दी जा रही है ?

बलराज : किसी पास-पड़ोस के बंगले में नहीं हमारे अपने ललितमहल के प्राँगण में ही पार्टी चल रही है। (विक्रम अचम्भे से देखता है मानो स्तब्ध सा पूछ रहा हो "क्या ?") मैं इतनी देर से तुम्हें यही समझाने की कोशिश कर रहा हूँ, मतलब यह है कि···माने···यूँ समझो···यहाँ लगभग हर दिन प्रीतिभोजों का आयोजन होता रहता है ! दावतों पर दावतें···

विक्रम : (टोक कर) यह सब तुम क्या कह रहे हो बलराज ? हर रोज ! इस··· हमारे इस ललितमहल की हरियाली पर दावतों का जश्न ? इस ललित महल के मालिक, इस उद्योग-समूह के अधिनायक, इस राजेन्द्रनगर के प्राण मेरे पापा—शिवशंकर राजेन्द्र एक दुर्घटना में स्वर्ग सिधार गये। अरे, अभी उनकी बरसी भी नहीं हुई है और यहाँ···

बलराज : मगर विक्रम, यह राजेन्द्र उद्योग समूह के स्वर्ण महोत्सव का वर्ष भी तो है।

विक्रम : (आग-बबूला होकर) गया जहन्नुम में, हेल विद इट ! इस उद्योग समूह के निर्माता को इसी कारखाने की मयारी टूट पड़ने से उसके नीचे कुचलकर सांघातिक प्रहार के कारण जीवन मुक्त हुए अभी दस महीने भी नहीं बीते हैं और···(रुकता है—फिर बाहर जाकर देखता है, निहारता है—और वापिस लौटते हुए आवेश के साथ) आइ सी ! अब बात कुछ समझ में आयी। दिमाग रोशन हुआ। यह सारा समारोह बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स के कुटिल सदस्यों द्वारा चलाया जा रहा होगा। पत्थर दिल कहीं के। उन्हें तो बस मुनाफ़ा, भत्ता, मौजमस्ती, रंगरलियों से ही सरोकार है। यही उनका हिसाब-किताब है। लाश के माथे पर लगा मक्खन भी चट कर जाने वाले ये नरपिशाच दस महीने से अधिक धीरज रख ही कहाँ सकते हैं ? मगर मेरे पापा के दाहिने हाथ, इस उद्योग समूह के जनरल मैनेजर, जिन्हें पापा ने अपने छोटे भाई की तरह पाला-पोसा था, वह श्री प्रियरंजनदास; और पापा के पर्सनल असिस्टेंट, निजी सहायक, मेरी प्रियतमा जाई के पिता दयाल साहब ने इस उत्सव के लिए अपनी स्वीकृति कैसे दी ? क्या यही तो नहीं हुआ कि बोर्ड के सारे सदस्यों—उन इनसानी गिद्धों ने इन दोनों को धूल में मिला दिया है ? आखिर हुआ क्या है ? बलराज, तुम मेरे जिगरी दोस्त हो मगर फिर भी तुम मुझसे कुछ छिपा जरूर रहे हो। (रुककर) माताजी कहाँ हैं ? मुझे बतलाओ बलराज,

मेरी माँ कहाँ हैं ? वह मुझे मिलने, मेरी अगवानी करने क्यों नहीं आयी ? हवाई अड्डे पर तुम्हारे सिवा और कोई भी क्यों नहीं पहुँचा ? दयाल साहब, खानझोडे, कीर्तिकर, पापामियाँ नटवरलाल सारे के सारे गायब ! पापा के दाहिने···बायें दोनों हाथ, सब कर क्या रहे थे ? क्या यहाँ दावत पर जमकर हाथ मार रहे थे ? या रंगरलियाँ मना रहे थे ? मुझे स्वयं ही समझ लेना चाहिए था कि जब एक पेड़ जड़ से उखड़ जाता है तो उसकी सारी शाखाएँ पल्लवविहीन हो जाती हैं, पत्ते सूख जाते हैं ! लेकिन···जाई···? वह एयरपोर्ट पर क्यों नही आयी ? उसे यह मालूम था कि मैं आ रहा हूँ । फिर क्या दयाल साहब ने उसे मुझसे मिलने की भी मनाही की है ?

बलराज : तुम्हें यह सब शांतिपूर्वक समझ लेना चाहिए । इन दस महीनों में इस राजेन्द्रनगर में बहुत कुछ बदल चुका है ।

विक्रम : वह तो मैं समझ रहा हूँ, उसकी कल्पना भी कर रहा हूँ । इस नगर के नरकेसरी के लुप्त होते ही इस प्रासाद के हर बिल के चूहे ने अपने आपको बिलंदर समझ कर, सारे राजेन्द्रनगर को रौंदना शुरू कर दिया है ।

बलराज : बस इतना ही नही, पानी परकोटा लाँघ गया है । बहुत उलट-फेर हो गया है यहाँ लेकिन तुम्हें बड़ी हिम्मत के साथ परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा—आगे बढ़कर उन्हें झेलना होगा—अपने कलेजे पर पत्थर रखकर—मजबूत मन से सब सहना होगा ।

विक्रम : (निहारते हुए) तुम कहना क्या चाहते हो ? (बलराज कुछ कहने का प्रयत्न करता है मगर फिर कहने का अवसर न पाकर चुप हो जाता है ।) ठीक है, फिर भी··· (भीतर प्रवेश करते हुए) हम पहले माताजी से मिल लें फिर बातें करने के लिए बहुत समय है···

बलराज : (रास्ता रोकते हुए) रुको विक्रम, माताजी घर में नही है ।

विक्रम : (रुककर पीछे मुड़ते हुए) घर में नहीं हैं ? तो फिर कहाँ गयी हैं ?

बलराज : वहाँ···उधर···बाहर के लॉन में मेहमानो की खातिरदारी कर रही हैं ।

विक्रम : (मानो आघात पहुँचा हो)···क्या···क्या···कहा···क्या कहा तुमने ? माताजीऽऽ ? दावत में मेहमानों की देखभाल कर रही हैं ? नही···नहीं ···*बिल्कुल नहीं···यह तुम्हारा भ्रम है या नासमझी* । मुमकिन है, पापा ने अपनी आखिरी इच्छा···यही···रखी हो कि उनके द्वारा प्रारम्भ किया हुआ स्वर्ण महोत्सव बिना रुकावट के पूरा हो जाए । दि शो मस्ट गो आन··· हाँ—बस यही हो सकता है इसलिए···वह अपना सारा गम निगलकर मेहमान-नवाजी में लगी···

बलराज : नहीं विक्रम। तुम्हारी···माताजी अतिथियों का सत्कार पूरे आनन्द के साथ, प्रफुल्लित अंतःकरण से कर रही हैं और वह भी अपने नये पतिदेव के साथ मिलकर···

विक्रम : (मानो वज्रघात हुआ हो) ···क···क्या···क्या···कहा···अपने··· को···न ? अपने···नये ? ···कौन? (उस पर झपटकर उसका गला पकड़ते हुए) कौ ऽऽऽ न ?

बलराज : (गर्दन छुड़ाकर) विक्रम। मेरा गला घोंटने पर भी सचाई का गला नहीं घुट सकता।

विक्रम : (उसे दूर करते हुए) पति ऽऽ देव ऽऽ ? नहीं बलराज नहीं। यह मुमकिन नहीं है। कह दो तुमने यह गलत कहा है। झूठ कहा है। मेरे दोस्त, कह दो तुमने मजाक किया था। मसखरी की थी···परिहास किया था। जो कुछ कहा है वह सच नहीं है। बस तुम इतना भर कह दो। मैं बस यही भीख माँगता हूँ। बस यह भिक्षा मुझे दे दो···दोस्त ! मेरे मित्र (बलराज अपनी गर्दन नीचे झुका लेता है और वैसे ही खड़ा रहता है···) इस तरह गर्दन झुकाकर मत खड़े रहो मेरे दोस्त ! यह कैसे सम्भव है ? क्या तुम जानते नहीं हो कि पापा से माँ को कितना गहरा, कितना अटूट प्रेम था ! बस अनुराग की तलवार पर, चमचमाती धार जैसा उनका प्यार था। अरे, मेरे पिताजी वैसे ही पराक्रमी, सुयोग्य, चरित्रवान् और स्नेहपूर्ण पति थे। माँ से उनको बेहद प्यार था। एक तार छेड़ते ही जैसे सितार के दूसरे तार झंकृत हो जाते हैं, वैसे ही एक की आँखों में अगर परेशानी के बादल मंडराते तो दूसरे की आँखों में जल छलक उठता था'' डबडबा जाती थी आँखें। वे इतने एकरूप हो गये थे, एक दिल—एक जान, कि एक के होंठ फड़फड़ाये तो दूसरे की जुबान से मन की बात फूट पड़ती थी। मैं तुमसे यकीनन कह सकता हूँ बलराज, कि जिस नारी ने एक बार पापा से प्रेम कर लिया हो वह जीवन भर किसी पुरुषोत्तम को भी अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकती। वह उसकी ओर झाँककर भी नहीं देखेगी, वह ऐसे पूर्ण पुरुष थे; और तुम कह रहे हो···(रुककर) मुझे लगता है तुम्हें किसी ने कुछ गलत-सलत कह दिया है। मेरे दोस्त, तुम्हें किसी ने बेवकूफ बनाया है। यह हो ही नहीं सकता···कदापि नहीं, कभी नहीं हो सकता। अरे इस तरह की किसी घटना ने यदि आकार लिया होता तो क्या उस मामले का मुझे पहले से ही पता न चलता···? खैर— लेट मी टेस्ट यू ! बताओ वह कौन है ? बताओ कौन है वह ? मेरे पापा जैसे पूर्ण पुरुष की पावन स्मृति को इन दस महीनों में ही भुलाकर मेरी माँ ने इस उम्र में इतनी भरघटी जल्दी से जिसके गले में इस लम्पटता के

साथ जयमाला पहनाई है वह कौन तीसमारखाँ है ? कौन है वह पुरुष-श्रेष्ठ, जिसे विधाता ने इस धरती तल पर जन्म दिया हो ? अन्य कोई नहीं हो सकता ! बाद मुद्दत के होता है चमन मे दीदावर पैदा ! मैं दावे से कह सकता हूँ भगवान् भी ऐसे इनसान बार-बार पैदा नही कर सकता। (एक पागल की तरह अट्टहास कर) व्हाट ए सिली न्यूज ! तुम महामूर्ख हो बलराज। तुम निरे बुद्धू हो। तुम चक्कर में आ गये हो। तुम्हें किसी ने धोखा दिया है, तुम्हें फांस लिया है। बोलो सच है ? सच है ? यह है न सच ? (बलराज गर्दन उठाकर उसकी तरफ़ विकलता के साथ देखता है और बस देखता रहता है जिसे विक्रम सहन नहीं कर पाता। वह चौंककर कदम पीछे करता हुआ चीख पड़ता है)···नहीं···नहीं···नहीं ऽऽऽऽऽ··· (जैसे धक्के से फेंका गया हो उस तरह पीछे सरकते हुए) तो फिर मैं ही मूर्ख हूँ ! बेवकूफ हूँ ! मेरे साथ छल हुआ है, कपट हुआ है—बेवफाई हुई है। (शुष्क दृष्टि से देखते हुए) ···कौन है वह ?

बलराज : राजेन्द्र उद्योग समूह के एक समय के जनरल मैनेजर···

विक्रम : (चौंककर) नहीं ! यह सम्भव नहीं !

बलराज : तुम्हारे पापा के एक समय के दाहिने हाथ ··दूर के रिश्ते से उनके भाई···आज के मैनेजिंग डायरेक्टर···

विक्रम : प्रियरंजनदास ? वह···वह···हमारे सहारे पर जीने वाला हमारा एक आश्रित रिश्तेदार ?

(जैसे ही बलराज गर्दन हिलाकर 'हां' करता है वैसे ही विक्रम अपने हाथ में पकड़े हुए ब्रीफकेस को झटके से फेंकता है और जोर से चीखते हुए धड़ाम से बैठ जाता है।)

विक्रम : ओ गॉड ! हेल अपान मी ! मैं नरक में गड़ जाऊँ !

(विक्रम अपनी हथेलियों से मुँह ढककर सिसक पड़ता है। उसकी सिसकियों में उसके हृदय की सारी तड़पन फूट पड़ती है। बलराज उसके पास जाकर उसके कंधे पर हाथ रख, उसे धीरज बंधाता है—"शांत हो जाओ विक्रम—धीरज से काम लो—" वह इस तरह उसे समझाने का प्रयास करता है, मगर विक्रम चिढ़कर उसका हाथ झटक देता है। फिर वह अपने प्रयासों से आप ही अपने आप को सम्भालता है।)

विक्रम : क्षमा करो बलराज ! मुझे माफ़ करो ! मैं ज़रा आपे से बाहर हो गया था। मुझे इस तरह बेकाबू नहीं होना चाहिए था, मगर हो गया। सो दैट्स इट ! जाने दो ! तो इस प्रासाद के हरे-भरे मैदान में चल रहा यह प्रीतिभोज समारोह नवदम्पति के सम्मान में दी जा रही पार्टी है ?

बलराज : नहीं विक्रम ! राजेन्द्र उद्योग के स्वर्ण महोत्सव के लिए···

विक्रम : (गरजकर) स्वर्ण महोत्सव तो केवल आँखों में धूल झोंकने का एक बहाना है बलराज। लोग मुँह पर कीचड़ न उछालें, छी···थू···न करें, इसके लिए एक दिखावा है। पापा इस स्वर्ण महोत्सव के अवसर पर एक घोषणा करने वाले थे कि सारे कारखानों की भलाई के लिए सभी काम करने वालों को इस उद्योग का भागीदार बना लिया जाएगा।

बलराज . मगर अपने सहयोगियों की इच्छा के विपरीत···

विक्रम : हाँ, हाँ, अपने सारे सहयोगियों की इच्छा के विरुद्ध। अपने स्वार्थ के लिए जमा हुए ऐसे सहयोगियों के विरोध की परवाह न करते हुए वह इस योजना को···

बलराज : मैनेजिंग बॉडी ने एकमत होकर इस योजना को अस्वीकार कर दिया है।

विक्रम · अच्छा, तो पापा की इस तजवीज को रद्दी की टोकरी में फेंका जा सके इसीलिए मेरे लौटने से पहले ही नयी मैनेजिंग बॉडी और नये मैनेजिंग डायरेक्टर का चुनाव कर लिया गया था। मैं ठीक कह रहा हूँ न? मुझ जैसे रोड़े को अपने आप ही हटाया जा सके इसीलिए इतनी जल्दी यह शादी निपटा ली गयी जैसे अरथी निकालने में की जाती है···आइ सी ऽऽ, अब मुझे सारे सूत्र स्पष्ट होते जा रहे हैं···सुराग मिलते···

बलराज : कैसे सुराग?

विक्रम : एक महीने पहले मुझे एक बेनामी खत आया था! कोई एक कर्मचारी था इसी राजेन्द्रनगर का। बेनामी खतों को बेकार मानता हूँ मैं इसलिए मैंने उसे फाड़कर फेंक दिया था। मगर अब···(रुक जाता है।)

बलराज : उस पत्र में क्या लिखा था?

विक्रम : यही कि पापा कारखाने की मचानी टूट पड़ने से काल के गाल में गये—यह एक दुर्घटना नहीं थी बल्कि बहुत सोच-समझकर तय की गयी एक योजना थी, एक पूर्व निर्धारित योजना।···खून···की···

बलराज : (उसके मुँह पर हाथ रखते हुए) मुँह बन्द रखो मेरे दोस्त ···दीवारों के भी कान होते हैं। अब जमाना बदल गया है।

विक्रम : तो और क्या हो जाएगा? जिसने पापा को परलोक भिजवाया वही मुझे भी···

बलराज : उससे पहले ही लोग तुम्हारी खबर ले लेंगे अच्छी तरह। प्रियरंजन दास लोगों को कितने प्रिय हैं इसका तुम्हें अभी पता नहीं है!

विक्रम : बातों ही बातों में उन्होंने पापा की सारी हुकूमत हड़प ली इससे मुझे उनकी कूवत का पूरा अंदाजा लग गया है। उनका प्रभुत्व···

बलराज : केवल प्रभुत्व ही नहीं, उनकी पत्नी भी।

विक्रम : हूँ ऽ ऽ ऽ, तो मुझे पूरी तरह बरबाद करने का इन्तज़ाम हो चुका है।

बलराज : इसीलिए तुम्हें पूरी नीति निपुणता के साथ कदम रखने होंगे मित्रवर।

विक्रम : (आकाश की ओर देखते हुए) हूँ ऽ ऽ ऽ, यह शादी कब हुई ?

बलराज : एक मास पहले और खुले आम सबके सामने'''

विक्रम : अच्छा ! और किसी को इस विवाह से अचरज नहीं हुआ ? किसी के मन को धक्का नहीं लगा ? किसी ने भी इस विवाह से अपनी असहमति प्रगट नहीं की ?

बलराज : भले ही अचरज हुआ हो और धक्का भी पहुँचा हो मगर मुँह कौन खोलेगा ? और फिर पराये लोगों को इसका विरोध करने की पड़ी भी क्या है ?

विक्रम : तुम ठीक कहते हो। यह मुझे पहले ही समझ लेना चाहिए था।'''तो मेरे दोस्त, क्या तुम अब इस बदनसीब अभागे इनसान पर एक छोटी सी मेहरबानी कर सकोगे ?

बलराज : (व्याकुल होकर) विक्रम, क्यों मुझ पर ऐसे तीखे तीर चला रहे हो ?

विक्रम : कौन जाने, जो व्यक्ति अभी कुछ समय पूर्व तक प्यार और दुलार के सतरंगी स्वर्ग में विहार कर रहा था उसे अचानक ही अनुराग की कगार से नीचे ढकेल दिया गया है और वह बेहाल घिनौनी दलदल में गिर पड़ा है। वह तलाश कर रहा है कि आख़िर वह है कहाँ ? सारे नाते-रिश्तेदारों का गारा उसके अंग-अंग से सना हुआ है। इस दलदल में वह टटोलकर देख रहा है कि इसमें उसके अंग कौन-से हैं और गारा मिट्टी कौन-सी है। बलराज, तुम मेरा एक काम करो। ज़रा वहाँ जाओ जहाँ दावत चल रही है और श्रीमती ललितागौरी से कहो'''

बलराज : श्रीमती ललितागौरी ?

विक्रम : हाँ देवी ललितागौरी जी। तुम्हें शायद यह मालूम नहीं है कि मेरे स्वर्गीय पिता की भूतपूर्व पत्नी का शुभ नाम श्रीमती'''नहीं पहले था यह नाम।

बलराज : मतलब तुम्हारी माँ साहिबा ?

विक्रम : अब माँ साहिबा समाप्त हुईं बलराज। कुछ समझे ? एक कपूर की टिकिया की तरह माँ भी जलकर भुरभुरा गयी और अब बची है बस उसकी कज्जली—जिसका नाम है ललितागौरी। जाकर उन्हें सूचना दो कि स्वर्गीय श्रीशिवशंकर राजेन्द्र का यह अनाथ बेटा विक्रम दूर विदेश से वापिस लौटा है। जैसे ही आपका आनन्दोत्सव समाप्त हो जाए आप अपनी सुविधा के अनुसार आकर उससे मिल लें। लेकिन मुलाकात के लिए

जब पधारें तो बस अकेली ही पधारें। अपने नये पतिदेव की ढाल साथ लेकर न आये।

बलराज : अपने गुस्से को पी जाओ विक्रम, अपने संताप के आवेग पर विवेक की लगाम लगाओ। ज़रा सोचो! मैं तुम्हारी भावनाओं को समझता हूँ लेकिन उनका बवंडर की तरह वेग पकड़ लेना उचित नहीं है। भले ही तुम्हारे तलवे की आग मस्तक तक पहुँच रही है परन्तु प्रियरंजनदास ने तुम्हारी माता के साथ विवाह किया है—विवाह। यह दोनों की अपनी खुशी का मामला है। मियाँ बीबी राज़ी तो क्या करेगा काज़ी? इसमें किसी की कोई ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं थी। और अगर ठीक ही सोचा जाए तो क्या वे दोनों अपनी मनमानी करने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं?

विक्रम : सही कहते हो मेरे साथी। तुमने सही राय दी है। वे दोनों जो चाहे सो करने के लिए स्वतन्त्र हैं। मेरी ज़िन्दगी को तहस-नहस कर उसे कूड़ेदान में फिकवा देने के लिए भी वे दोनों आज़ाद हैं। आखिर यह भी तो मियाँ बीबी की मर्ज़ी का मामला है, है न! तो फिर जाओ उनके चरणों के सामने पलक पाँवड़े बिछाकर उन्हें बाजे-गाजे के साथ शोभा यात्रा में यहाँ ले आओ। तब तक मैं उनके लिए गुलाब के फूलों का एक सिंहासन पूरी तरह सजाकर मातृ-ऋण से मुक्त होने की तैयारी करता हूँ। यह तो स्वीकार है न?.

बलराज : (दुखी होकर) मुझ पर गुस्सा मत निकालो विक्रम। अगर मुझसे कोई गलती हुई हो तो मुझे माफ़ करो। मगर मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे···

विक्रम : मैं सब समझता हूँ बलराज। अरे पगले मुझे तुमसे कोई नाराज़गी नहीं है, उनसे भी नहीं। मेरा तो सारा गुस्सा है अपने भाग्य पर! मेरे हिस्से में ही विधाता ने ये सारे भोग क्यों दिये हैं? पापा की दुर्घटना से हुई मृत्यु का शोक अभी सहकर कुछ संभला था और नयी आशाओं के साथ उनके सारे सपनों को साकार करने का संकल्प कर मैंने हवाई जहाज़ से अपनी धरती पर कदम रखा था मगर अपने घर में कदम रखते ही मेरे सामने घिनौने और अमंगल समाचारों का थाल-सा आ गया। अब और किन पापों का प्रायश्चित्त करना लिखा है मेरे भाग्य में?

बलराज : तुम्हारे सवालों का कोई जवाब नहीं है विक्रम—यहीं क्या इस दुनिया में कहीं भी नहीं है।

विक्रम : देयर एन्ड्स दि होल मैटर। बस सारा मामला यहीं खत्म होता है। तुम जाकर उन्हें केवल मेरा संदेशा पहुँचा दो···बिल्कुल उन्हीं शब्दों में जैसा मैंने तुम्हें कहा है। जाओ।

(बलराज चुपचाप चला जाता है। विक्रम बलराज को उस ओर जाते हुए देखता रहता है। फिर वह भावनाओं के वशीभूत, बोझिल मन से स्वयं ही से बोलने लगता है।)

विक्रम : बस दस महीने पहले की बात,
पति के प्रेत पर जो गिरी थी पछाड़ खाकर
आँसुओं की गंगा-जमना बहाती हुई,
उसी ने झट भूलकर अपने पति को,
त्याग कर पुत्र अपना,
क्यों दौड़ लगाई व्यभिचार की शैया की ओर?
यह सुन धरती माँ भी झुक जाएगी मातृत्व की लाज से
सम्भव है फिरने लग जाए वह उलटी दिशा में
लज्जा से आंचल में मुँह छिपाये;
और फिर होगा चमत्कार;
न रहेगा मौज का भी पारावार (खिलखिलाकर हँसता है)
बूढ़े हो जाएँगे जवान; जवान बन जाएँगे किशोर
बातों ही बातों में तुतलाते बोल
फूट पड़ेंगे बच्चे बने किशोरों के मुख से,
और फिर नन्हे-मुन्ने रेंगते-रेंगते उछल पड़ेंगे पलनों में
दूध पीते नवजात शिशु के रूप;
साथ ही उदर से निकले शिशु भी विलीन हो जाएँगे माँ के गर्भ में
पीढ़ियाँ ही पीढ़ियाँ लुप्त हो जाएँगी इस तरह,
न बचेगा इतिहास मानव वंश का
मिट जाएगा इनसान, बंदर भी लुप्त हो जाएँगे
पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सभी लुप्त होंगे, काल के गाल में
बस टिकेगी मरघट की शांति निर्जीव औ निस्तब्ध सो,
जन्म लेने के लिए जरूरी है एक माता नाम की मादा
मगर मौत के लिए माँ की कोई जरूरत ही नहीं है।
मौत को चाहिए बस ईंधन का सिंहासन,
और साम्राज्य श्मशान का।
लेकिन नहीं होगा ऐसा कुछ घटित
न सरिता बदल सकती है, न धरती ले सकती है उलटी गति।
होनहार होकर रहा है।
चूर-चूर हो गया है कलेजा मगर,
होंठ सी लिये हैं मैंने, स्वीकारा है मौन।

बुजुर्गों की विलास-लीला में एक स्वप्न खंडित हो रहा है।
हो जाने दो खंडित,
झुलस रहा है किसी का अस्तित्व,
झुलस जाने दो।
इससे विश्व मे प्रलय तो नही आ जाएगा।

(विक्रम शून्य मन से बैठा है। इसी समय एक जवान, सुन्दर, अल्हड़ स्वप्निल आँखो वाली युवती जल्दी-जल्दी बाहर से प्रवेश करती है और महाद्वार पर रुककर निहारती है। विक्रम के दिखाई पड़ते ही वह मारे खुशी के "विक्रम मैं आ गयी" कहती हुई दौड़ी आती है। विक्रम का ध्यान टूटते ही वह मुड़कर देखता है—"कौन! जाई?" कहकर चुप हो जाता है। जाई पास आकर उसके हाथ अपने हाथों मे लेती है और लाड़ से उसे एकटक देखती है, फिर जल्दी-जल्दी बोलने लगती है।)

जाई : कब आये? बस अभी-अभी बंगले पर पहुँचे होगे? मैं जानती हूँ। मैं लगातार एयरपोर्ट फ़ोन कर रही थी। जैसे ही पता चला कि हवाई जहाज़ उतर गया है मैं झट यहाँ आने के लिए रवाना हो गयी। तुम इस तरह सुस्त क्यों हो? मुरझाए से क्यो दिख रहे हो? क्या सफ़र में कोई तकलीफ हुई? मैं तुम्हें हवाई अड्डे पर दिखाई नही पड़ी क्या इसलिए नाराज़ हो गये मुझसे? देखिए जी, नाराज़ ही होना हो तो मुझ पर नाराज़ मत होइए, अपने बचपन के दोस्त पर नाराज़ होइए। उसे खूब डाँटिए जी भरकर। मैंने बलराज से बार-बार कहा था···

विक्रम : यह सब उसने मुझे बता दिया है।

जाई : लो देखो! तिस पर भी तुम मुझ पर ही आग-बबूला हो रहे हो।

विक्रम : (उसके चेहरे पर टकटकी लगाकर देखते हुए) आग-बबूला? नही! नही! मैं और आप पर आग-बबूला? आज तो आनन्द ही आनन्द है। चारो तरफ़ आनन्दोत्सव का अवसर है न आजकल···? बाहर सब ठीक है लेकिन देवीजी, आजकल आप तो प्रसन्न हैं न?

जाई : देवीजी? अच्छा, तो मैं देवीजी बन गयी? मैं कब से बन गयी तुम्हारे लिए देवीजी? और फिर हमारी प्रसन्नता का तुमको बड़ा ध्यान आने लगा है? बतलाइए! बोलिए न! आते ही मेरी खिल्ली उड़ाकर मुझे चिढ़ाने का तुम्हारा इरादा लगता है! है न यही बात? (हँस देती है।) ओ दैया, मैं तो भूल ही गयी थी, (पर्स खोलते हुए) देखो मैं तुम्हारे लिए क्या लाई हूँ, पहचानो तो जानूँ! पहचानो न! (उस पुड़िया को खोलते हुए) अभी भी खुशबू नही आयी? (हथेली की अंजलि सामने करते हुए) देखो तो सही, कैसा चटकदार पीला रंग है चम्पा का (सुगन्ध लेकर) मेरा चम्पा

वैसे सुगन्ध ही नहीं मस्ती भी बिखेर देता है चारों तरफ़। (अंजलि उसकी ओर बढ़ाकर) लीजिए। लीजिए न? अब ग्रहण भी कीजिए श्रीमान! इस तरह मेरी ओर टकटकी लगाकर मुझे क्यों देख रहे हैं?

(विक्रम का इस तरह रूखेपन से उसे टकटकी लगाकर देखना उसके उत्साह को ठंडा कर देता है। वह घबरा जाती है और अपनी अंजलि पीछे खींचकर…हिचकिचाते हुए) तुम मुझसे बहुत नाराज हो? मुझसे गलती हुई है। इन छः महीनों में मैंने तुमको कोई पत्र नहीं लिखा—तुम्हारे खतों का जवाब तक नहीं दिया, यह मेरा अपराध अवश्य है मगर मुझे समझने का प्रयास करो जरा। पिताजी, माँ सबने पत्र न लिखने की ताकीद की थी मुझे। सब लोग मुझे बराबर चेतावनी देते रहते हैं कि मैं तुम्हारे बारे में विचार भी न करूँ।…मैं…बस तुम्हारे आने का इन्तज़ार कर रही थी। अपनी सौगन्ध……आजकल यहाँ की हवा ही बदल गयी है…मगर…मैं बिल्कुल नहीं बदली हूँ…सच।

विक्रम : आप बहुत ही वफ़ादार हैं देवीजी।

जाई : मुझ पर यकीन कीजिए, मैं भरोसेमंद हूँ। उन्होंने मुझे कितना कहा मगर…

विक्रम : और आप खूबसूरत भी हैं। है न?

जाई : (चौंककर और घबरा कर) विक्रम—तुम आखिर कहना क्या चाहते हो?

विक्रम : मैं बस इतना ही कहना चाहता हूँ कि खूबसूरत लोग बहुत देर तक वफ़ादार नहीं रह पाते, क्योंकि खूबसूरती में कोई ऐसी जहरीली ताक़त है जो ईमानदारी को खोखला कर देती है, देखते ही देखते उसे दुराचारी बना देती है। मुझे इसका काफ़ी निजी अनुभव हो चुका है। इसलिए आपके भाई, पिता और माताजी ने बड़ी नेक सलाह दी है आपको। भूल जाइए आप, मेरा विचार भी अपने दिमाग से निकाल फेंकिए।

जाई : (शिकायत के स्वर में) नहीं विक्रम, नहीं…

विक्रम : मैंने कभी किसी समय आपसे कहा था कि 'मुझे तुम से प्रेम है'—कहा था न? अब…

जाई : यह भी कोई पूछने की बात है? अब क्या मतलब है?

विक्रम : मतलब साफ़ है। आपको उस समय मुझ पर विश्वास नहीं करना चाहिए था। क्योंकि मेरी अपनी माँ के खून से मुझमें भी कपटीपन की बुराई आ सकती है, आ गयी होगी; और ऐसे रक्त में ईमानदारी के सद्गुणों की कलम नहीं लगाई जा सकती।

जाई : विक्रम…

विक्रम : इसलिए व्यवहार कुशलता तो इसी में है कि आप मेरा साथ छोड़ दें।

यह ठीक समय है। इस राजेन्द्रनगर में, विवाह की हाट में, आप जैसी विवाह योग्य, अमीर घराने की खूबसूरत लड़की के लिए कोई अच्छा जवाँमर्द अभी भी फुसलाया जा सकता है। सम्भव है आपके माता-पिता इसी प्रयास में लगे भी होंगे लेकिन…

जाई : आज तुम्हें क्या हो गया है विक्रम ? बस मेरी यही क़द्र की है तुमने और वह भी इतनी घटिया ? क्या मैं…

विक्रम : क्षमा करें देवी—दोनों ओर से भूल-चूक माफ़। सवाल यह नहीं है कि मेरे हिसाब से आपका सही मूल्य क्या है, असल में शादी के बाज़ार में आज आपकी क्या कीमत आंकी जा सकती है यही सोचना बाकी रहा है। अगर आप अपने माता-पिता से अधिक चतुर हैं, अर्थात् अधिक होशियार, —मतलब, चालबाज़, तात्पर्य अधिक व्यवहार कुशल उर्फ़, झूठी, दगाबाज छली-कपटी हों तो फिर ठीक ही है। आप जो भी हों फिर भी मेरी एक सलाह मानिए। शादी कभी मत कीजिए। इस शादी के बदले आप एक सिद्धान्तवादी समर्पित समाज-सेविका बन जाइए। समाज-सेविका में आप परिचारिका, शिक्षिका, आश्रमवासी सेविका, ग्रामोद्धारक, अनाथ-महिलाश्रम-बालिकाश्रम संचालिका—वगैरह—चाहे जो बन सकती है। बस ब्रह्मचर्य का दिखाऊ पालन कीजिए। अपनी बौद्धिक भूख मिटाने के लिए मित्र बनाना, साथी रखना कोई बुरी बात नहीं है। समझी ? अपनी भूख भले ही शांत कर लीजिए मगर शादी मत कीजिए। और फिर विवाह आखिर होता ही क्या है ? मातृत्व प्राप्त करने और उससे गौरवान्वित होने तथा उसे निडरता से धारण करने की एक व्यवस्था। और माँ बनना अर्थात् कल के चांडालों को आज जन्म देना ही हुआ, बस—इसके सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए अगर मेरी राय मानें तो आज दुनिया में जितने चांडाल हैं वे ही बहुत काफ़ी हैं। नये चांडालों को जन्म देने के बदले बाझ बने रहना अच्छा है। इसीलिए देवीजी, आप अपनी स्वतन्त्र इच्छा और रज़ामंदी से समय रहते ही किसी अच्छी समाजसेवा में जुट जाइए।

जाई : (व्यथित होकर) विक्रम ! क्या हालत हो गयी है तुम्हारी। मारे सदमे के तुम पागल तो नहीं हो गये हो…

विक्रम : हाँ ! फिर भी कह रहा हूँ। आप एक नारी हैं, यौवन की मोहकता से परिपक्व। इसलिए शादी के सिवा आपके पास और कोई चारा नहीं है। आपका ख़ून ही आपको चैन से जीने नहीं देगा। मेरी माताजी को ही देख लीजिए—एक पति के मरते-मरते ही क्या उन्होंने दूसरे को मंज़ूर नहीं कर लिया ? कहते हैं युद्ध और प्यार में सब चलता है। मेरे कहने का

मतलब यह है कि अगर आपको विवाह करने की उत्कण्ठा ही पैदा हो जाए तो किसी महामूर्ख से या किसी अधपगले से भले ही शादी कर लेना—फिर भी किसी निष्पाप बालक को जन्म मत देना। समझीं? आजकल खुले-आम यह सब निपटाने का इज्जतदार इंतजाम हो चुका है। इससे यह फ़ायदा होगा कि आप किसी भी तरह का कुलटापन करने के लिए मुक्त रहेंगी। आपके साथ सहवास करने वाले को भी कोई चिन्ता नहीं रहेगी, और सबसे बड़ी बात यह है कि किसी भी शीलवान सुयोग्य सुपुत्र के सामने भी आपके लिए शर्म से सिर झुकाने की नौबत नहीं आयेगी।

जाई : (रोते हुए) विक्रम···विक्रम, तुम यह सब क्या कह रहे हो?

विक्रम : मैं यह सब कह नहीं रहा हूँ देवीजी, मैं अपने मुंह में जबर्दस्ती ठूसी गयी गंदगी थूक रहा हूँ। (वह आवेग से उससे लिपटना चाहती है तभी—) बस दूर ही रहिए। मुझे स्पर्श मत कीजिए। आप भी गंदगी से लथ-पथ हो जाएँगी। (वह जाने लगता है।)

जाई : (आवेग से उसका हाथ पकड़ने का प्रयास करती है।) कहाँ जा रहे हो विक्रम?

विक्रम : (भीतर जाते-जाते रुकता है, मुड़ता है और व्यंग से) और कहाँ? स्नान करने जा रहा हूँ। मैं पानी से नहीं इत्र से नहाऊँगा। मैं देखना चाहता हूँ कि क्या बढ़िया से बढ़िया इत्र भी मेरे बदन की बदबू मिटा सकते हैं या नहीं।

(मर्मभेदी हँसी हँसता हुआ भीतर जाता है। जाई धम से नीचे बैठ-कर सिसक-सिसक कर रोने लगती है। उसी समय प्रियरंजनदास, ललिता गौरी, दयाल और सबसे पीछे बलराज बाहर से प्रवेश करते हैं। ललिता गौरी दौड़कर जाई को अपने अंक में भर लेती है और पुचकार कर···)

ललितागौरी : जाई! इस तरह रोना ठीक नहीं है। गुस्से के जोश में, दुख के आक्रोश में विक्रम कुछ भी बड़बड़ा गया हो तो भी वह दिल से इतना निष्ठुर नहीं है।

दयाल : (चिढ़कर) तुम्हारी भी तो बस हद है, जाई। सच कहता हूँ हुजूर, मैंने इसे सुबह से बहुत ही समझाया था कि देखो आज विक्रम साहब पधार रहे हैं फिर भी तुम उनसे हर हालत में नहीं मिलोगी। जाई, मैंने तुम्हें सौ बार समझाया था या नहीं?

जाई : (थर-थर काँपते हुए ऊपर की ओर देखती है।) हाँ— समझाया तो था आपने···पिताजी···इसीलिए मैं उन्हें लेने हवाई अड्डे तक नहीं गयी थी।

दयाल : तो फिर यहाँ सूरत क्यों दिखाई?

जाई : मैं तो बस उन्हें सिर्फ़ देखने ही आयी थी। बड़ी ग़लती हो गयी मुझसे।

मुझपर नाराज मत होइए पिताजी—मुझसे सच ही गलती हो गयी…होगी… पर…

ललितागौरी : जाई, तुमसे कोई गलती नही हुई है। दयाल साहब, मुझे बहुत हैरानी होती है आपको देखकर। आप इतने सुलझे-समझदार पिता हैं जाई के। अपनी खुद की बेटी, जिसकी शादी तय हो चुकी है, उसका मन भी आप नही पहचान सकते ?

दयाल : (विनय के साथ) यह बात नही है मालकिन साहिबा।

ललितागौरी : तो फिर यही आपको मगनी तोड़ने की मूर्खता तो नही सूझी ?

दयाल : नही, नही, आप कुछ और ही समझ रही है…मैं…मै तो…

ललितागौरी : विक्रम इतने दिनों बाद लौटा है, तो फिर उसे मिले बगैर यह चैन से कैसे बैठ सकती है ?

दयाल : नही…नही बैठ सकती… आप बिल्कुल ठीक कह रही हैं…मगर मेरे कहने का मतलब है…

प्रियरंजन : ललिताजी। हमने ही दयाल साहब को सुझाया था कि अभी और कुछ दिनों तक जाई को विक्रम से नही मिलना चाहिए।

ललितागौरी : (चकित होकर) आ ऽ ऽ प ऽ ने ? आपने ऐसा सुझाव दिया था प्रियरंजनजी ?

प्रियरंजन : हाँ ललिताजी, दयाल साहब को हमने ही ऐसी सलाह दी थी। अभी आप सबने सुन ही लिया है कि उसने किस तरह जाई से बातें की थीं, बे सिर-पैर की बातें। आपने उसका एक-एक शब्द सुना है। क्यों बलराज ?

(बलराज नीची गर्दन किये खड़ा है। वह अपनी गर्दन हिला कर स्वीकृति देता है।) उसकी हर बात, हर डांट-डपट, हर सुझाव उसकी समझदारी के लक्षण नही थे, यह साफ है।

ललितागौरी : फिर भी प्रियरंजन, वह बिल्कुल सिरफिरा नही है।

प्रियरंजन : (भावशून्य-सा) हो सकता है न हो। आई होप सो—उम्मीद तो यही है। मगर यह भरोसे के साथ नही कहा जा सकता।

ललितागौरी : (आवेश के साथ) मैं कह सकती हूँ, उसे केवल बहुत भारी धक्का पहुँचा है। उसे असहनीय दुख हुआ है, वह गुस्से से आग-बबूला हो गया है—और मैं…मैं यह अच्छी तरह जानती थी कि यह सब होगा। प्रियरंजन, मैंने आपको भी पहले ही उसकी कल्पना दे दी थी। उस समय मैं भी बार-बार आपको तरह-तरह से विनयपूर्वक समझा रही थी, मगर आपने मेरी एक नही सुनी। अब आप खुद देख लीजिए कितना भारी संकट सामने आ खड़ा हुआ है। मुझे लगता है…

प्रियरंजन : ललिताजी, पहले उसका संतुलन बिगड़ा था और अब आप डगमगा रही है। (उसे पास लेते हुए) आप क्या समझती हैं कि हम आपकी भावनाएँ नही समझते ? हमारी आँखों में देखिए और फिर कहिए। देखिए···हमारी आँखों से आँखें मिलाइए···(दृष्टि मिलते ही वह अभिभूत हो जाती है तब—) विक्रम आपका है और आप हमारी···हो···हमारी ! फिर ! विक्रम हमारे प्रिय बेटे के ही समान है न ? पगली कही की। यह सारा ऐश्वर्य वैभव आखिर किसके लिए है ? अपने विक्रम के लिए ही। बस फिर ? अब यह बात मानकर भी चलें कि उसे जबर्दस्त धक्का पहुँचा है, तो वह तो पहुँचने ही वाला था। उसका मिज़ाज कुछ गड़बड़ा गया है, यह हो सकता है। फिर भी क्या हम दोनों को अपना धीरज खो देना चाहिए या हिम्मत रखकर धीरज बँधाना चाहिए ? डोन्ट यू वरी। बेफिक्र रहो —ही विल बी ऑलराइट। सब ठीक हो जाएगा।

ललितागौरी : (उससे दूर हटते हुए) मुझे पहले जाकर उससे मिलना ही चाहिए। मुझे उसके साथ बातचीत करनी चाहिए।

प्रियरंजन : आप ऐसा क्यों कहती हैं ? हम दोनों ही साथ जाकर उससे मिलेंगे और फिर उसके साथ बातचीत भी करेंगे। क्यों बलराज ?

बलराज : मैं समझता हूँ इस समय कोई भी उनसे न मिले तो अच्छा हो।

प्रियरंजन : मगर क्यों ?

बलराज : पहले तो विक्रम आपसे मिलेंगे ही नही और अगर मुलाकात हो भी गयी तो···(रुक जाता है।)

ललितागौरी : (व्याकुल होकर) बलराज, तुम ऐसा क्यों समझते हो ?

बलराज : माँ साहिबा, विक्रम ने मुझे आपको एक संदेशा पहुँचाने के लिए कहा था, लेकिन मेरी ही हिम्मत नही हो रही थी इसलिए···मैं···(रुक जाता है।)

प्रियरंजन : संदेशा क्या था ?

(बलराज खामोश रहता है।)

ललितागौरी : बोलते क्यों नहीं ? तुम मौन क्यों हो ? तुम ही चुप रहोगे तो हम समझेंगे कैसे ?

बलराज : अब मैं उनके ही शब्दों में कहूँ तो उन्होंने मुझे यही आदेश दिया था। लेकिन उनका संदेशा सुनकर माँ साहिबा, आपको बड़ा सदमा पहुँचेगा।

प्रियरंजन : तो फिर हम समझते हैं कि···

ललितागौरी : नहीं, मुझे भले ही कितना भी दुःख क्यों न पहुँचे मगर मुझे उसके मन की बातें समझनी ही चाहिए।

बलराज : तो फिर सुनिए। (अपना मन मजबूत कर)—"स्वर्गीय श्री शिवशंकर

राजेन्द्र का यह अनाथ बेटा विक्रम दूर विदेश से वापिस लौटा है। जैसे ही आपका यह आनन्दोत्सव समाप्त हो जाए वैसे ही अपनी सुविधा के अनुसार आप उससे आकर मिल लें। लेकिन मुलाकात के लिए आते समय जब पधारें तो बस अकेली ही पधारें। अपने नये पतिदेव की ढाल साथ लेकर न आये।"

ललितागौरी : (जैसे चोट पहुँची हो) हे भगवन्! (अपना चेहरा ढककर सिसक पड़ती है।)

प्रियरंजन : तुम ठीक ही कह रहे थे बलराज, हमने सुन लिया। बस!

ललितागौरी : (आँखें पोंछते हुए उठती है) नहीं मैं अकेली ही जाकर उससे मिलती हूँ। मुझे जाने दो प्रियरंजन।

प्रियरंजन : कैसी बातें करती हैं? आज इस समय, हम में से किसी को भी उससे नहीं मिलना चाहिए। जब काँच गरम हो तो उसे अपने आप ही ठंडा होने देना चाहिए।

ललितागौरी : मेरी बात मानिए, वह ठंडा नहीं होगा—वह तड़क जाएगा। मुझे जाने दीजिए।

प्रियरंजन : ललिताजी, इस समय हम किसी भी तरह का खतरा मोल लेना नहीं चाहते। हम जो कहते हैं वही होना चाहिए। आप अपने अंतःपुर में जाकर विश्राम कीजिए। जाई, इन्हें साथ ले जाओ। बलराज, तुम जाओ और अपने दोस्त को जरा ठंडा करने की कोशिश करो। हम मेहमानों को विदा कर बस आते ही हैं। जाइए—ललिताजी—प्लीज—इस समय तो मेरी बात मान ही लीजिए। आपका सुख ही हमारा सुख है देवीजी। मानती है न? हमें बहुत सोच-समझकर इस मामले में रास्ता चुनना पड़ेगा। जाइए।

(जाई और बलराज ललितागौरी को साथ लेकर भीतर जाते हैं। उनके जाने पर—)

कहिए दयाल साहब, विक्रम की बातें सुनकर आपको कैसा लगा?

दयाल : मैं तो साहब सच ही कहूँगा। ये बात किसी समझदार आदमी के मुह से नहीं निकल सकती, जी हाँ! मैं तो साफ-साफ कहूँगा, ये तो किसी पगले की सिरफिरी बातें है हुजूर!

प्रियरंजन : गफलत में मत रहिए दयालजी! उसकी बकवास से पागलपन का आभास भले ही मिले मगर उसमें एक सूत्र था—मेल था—अनुकूलता थी। उसके शब्दों की बौछार भले ही बहकने वाली लगे, मगर उसकी जुबान से निकलने वाला हर तीर तेज जहर से सना हुआ था। और उसका निशाना जाई नहीं थी। मेरा अंदाज है कि वह जानता था कि हम सब

ओट में खड़े हुए सुन रहे हैं, इसलिए वह जाई को बहाना बनाकर हम पर कटाक्षों की चोट कर रहा था! ठीक है। उसकी इस अटकलबाज़ी का हमे अनुमान था हो। अब उस पर कड़ी निगरानी रखनी ही होगी। चाहे तो इसके लिए जाई को उससे मिलने-जुलने की पूरी आज़ादी दो। वह जब चाहे, तब उसे मिलने दो। मगर उसके हर काम और बात की मुझे फौरन खबर मिलनी ही चाहिए। वह पागलपन का बाना पहनकर भले ही आगरे जाने की तैयारी कर रहा हो मगर हम समझदारों को बिल्कुल बेखबर नही रहना चाहिए!

दयाल : आप बिल्कुल बजा फरमाते है हुजूर! अब आप इस बारे मे बिल्कुल बेफिक्र रहिए। मैं समझता हूँ, वह पागलपन का ढोंग नही कर रहा है। मुझे लगता है कि उसे जबर्दस्त धक्का लगने से वह सच ही…

प्रियरंजन : हो सकता है लेकिन अब एक बात तो तय है। एक म्यान में दो तलवारें नही रह सकतीं। इस राजेन्द्रनगर में या तो हम रहेंगे या वह रहेगा—नहीं तो फिर… (रुक जाता है।)

दयाल : यह आप भी कैसी बातें करते है हुजूर! आपको तो रहना ही होगा! सारे मजदूर, उनके सारे नेता, सारे कर्मचारी, सारे अधिकारी और हमारे बोर्ड के सारे डायरेक्टर एक स्वर से कह नही चुके है कि हमारे मालिक बस प्रियरंजन साहब हैं? मैं सच कहता हूँ हुजूर!

प्रियरंजन : मगर दयाल साहब, अब तो सारा नक्शा ही बदल चुका है। अब तो यही सब तय होना है। हमारे रहते इस ललितमहल में वह हमारी छाती पर मूँग दलकर चैन से नही रह सकेगा! मगर यह भी मत समझिए कि वह चुपचाप रहेगा—खैर…

(इतने में पार्श्व से आवाज आती है……"दयाल साहब! दयाल साहब!"—बलराज पुकारते हुए प्रवेश करता है।)

बलराज : विक्रम पिछले दरवाजे से चला गया।

प्रियरंजन : (विस्मय से) चला गया? कहाँ गया? कब गया?

दयाल : उसके खास कमरे में उसे देखा? कहीं किसी और कमरे में तो नही है?

बलराज : नही वह यहाँ से चला गया, यह निश्चित है। मैंने उसके शयनकक्ष की खिड़की से बाहर झाँककर देखा था। तब मुझे रास्ते के कोने पर उसकी पीठ दिखाई दी। मैं उसे ढूंढ ही निकालूँगा। (दौड़ता हुआ जल्दी-जल्दी बाहर निकल जाता है।)

प्रियरंजन : देख लिया दयाल साहब, मेरा इशारा कितना सही था…आप फौरन उसकी खोज कीजिए और अपने लोगों को उसके पीछे लगा दीजिए।

दयाल : जी, हुक्म सर आँखों पर ! मैं खुद ही लग जाता हूँ उसकी तलाश में हुजूर।

प्रियरंजन : और देखिए, फिलहाल उसे बिल्कुल खबर मत लगने दीजिए।

दयाल : किसे···जाई बिटिया को ?

प्रियरंजन : नहीं ललिता को। समझे ! अच्छा हम चलते हैं। अपने लॉन में मेहमान हमारा इन्तजार कर रहे होंगे। उन्हें कम-से-कम विदा करने तो हमें जाना ही चाहिए।

(दोनों जाने लगते हैं। प्रकाश लुप्त होने लगता है···अन्धकार।)

प्रवेश दूसरा

(स्थान : वही बाहरी हाल। संध्या का समय है। लगभग पन्द्रह दिन बीत चुके हैं। जब रंगमंच पर प्रकाश होता है तब ललितागौरी एक आसन पर हताश बैठी हुई दिखाई पड़ती है। जाई क्षोभित होकर एक पत्र पढ़ते-पढ़ते रुक गयी है।)

ललिता : (अशांति से) तुम रुक क्यों गयी जाई ? पढ़ो आगे।

जाई : माताजी, मैं इसलिए रुक गयी थी कि इससे आगे विक्रम ने गन्दी बस्ती का, वहाँ की हर दिन की जिन्दगी का, बहुत ही गन्दा और घिनौना चित्रण किया है। उसे पढ़कर तो मुझे भी उबकाई आ रही है।

ललिता : इस गन्दी बस्ती के गन्दे जीवन के बारे में विक्रम के पिताजी मुझे बहुत कुछ बता चुके हैं। वह सारा वर्णन छोड़ दो। उसके बाद वह क्या लिख रहा है सो पढ़कर सुनाओ। (रुककर) सुनाओ न !

जाई : (पढ़ती है) शादी के बाद की सुहागरात···

(रुक जाती है। उसका चेहरा उतरा हुआ है।)

ललिता : पढ़ो बेटी, इसमें कोई ऐसी बात नहीं है, आखिर यहाँ हम दोनों ही तो हैं। (रुककर) क्या बहुत ही शृंगारिक ढंग से लिखा है उसने ? स्वच्छन्द, अनर्गल···

जाई : शृंगारिक ! (पढ़ती है) सुहागरात का यह सुहाना अवसर तुम्हें कितना पसन्द आयेगा ? चारपाई पर विवाहित वर-वधू, नीचे जमीन पर बूढ़े माँ-बाप, बीच में फटी हुई साड़ी का एक जर्जर परदा। दूसरी तरफ़ किसी तरह सुरड़-सुरड़ाकर सोये हुए छः-सात लोग, बस नाम के लिए कनस्तरों के टीन से या ऐसी ही किसी चीज की बनी दीवारें और दीवारों के

पार पास ही शराब के अड्डों से आता हुआ हो-हुल्लड़···

ललिता : धत् ! वह ऐसी जगह जाकर रुका था ? उसे भी ऐसी क्या बेवकूफी सूझी थी ?

जाई : इस बारे में भी उन्होंने लिखा है—"महल की अमीरी और ऐशो-आराम से मुझे अपचन हो गया था इसलिए दो-चार दिन, झोपड़ियों की दुनिया की मेहमानदारी करने के लिए मेरा मन ललचा उठा था। जब माँगे मौत नहीं मिलती तो इन्सान किस तरह नरक में भी जीने का आदी हो जाता है इसका मैंने असली अनुभव प्राप्त किया है। मेरे इक्कीस साल के जीवन ने मुझे जो समझदारी नहीं सिखाई वह इन पन्द्रह दिनों में मैं सीख गया हूँ। पापा ने व्यर्थ ही मुझे इतने साल जर्मनी में रखा, इसके बदले वह अगर मुझे···"

ललिता : इसे झोपड़पट्टी की गन्दगी में रखना चाहिए था—कहीं वह यह तो नहीं कह रहा है ? फिर तो सच ही उसे पागलपन की सनक सवार हो गयी है। तुम्हें यह पत्र कब मिला ?

जाई : कल शाम को ! कोई इसे पत्र-पेटी में डाल गया था। इस लिफ़ाफ़े पर (लिफ़ाफ़ा उठाकर पढ़ते हुए) इतना ही पता लिखा है, 'जाई नामक एक गमले में खिले पुष्प के नाम' और पत्र के अन्त में लिखा है, 'आपका निर्माल्य'।

ललिता : तुमने यह पत्र दयालजी को दिखाया था ?

जाई : यह पत्र उन्होंने ही मुझे लाकर दिया है।

ललिता : तो फिर उन्होंने गन्दी बस्तियों में उसकी खोज़बीन···

जाई : जी हाँ की थी। यह पत्र उन्हें दो दिन पहले ही मिला होगा शायद ! उन्होंने सारी झोपड़पट्टी खोज डाली। उसके बाद ही उन्होंने यह पत्र मुझे दिया है।

ललिता : फिर उनको उसका कुछ पता चला ?

जाई : झोपड़ी मिल गयी, यह पत्र हमारी पत्र-पेटी में लाकर डालने वाला भी मिल गया, लेकिन विक्रम चार दिन पहले ही वहाँ से लापता हो गये हैं।

ललिता : तो क्या उसके बाद वह किसी को कहीं भी दिखाई नहीं दिया ? कहीं नहीं मिला ?

जाई : माताजी, मुझे कोई साफ़-साफ़ नहीं बतलाता है। मगर वह कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी को दिखे जरूर हैं—और मिले भी हैं।

ललिता : (साँस छोड़ते हुए) हूँ ऽऽऽ ! (रुककर) क्या इतनी लम्बी चिट्ठी में उसे मेरे लिए एक अक्षर भी लिखने की इच्छा नहीं हुई ? क्यों जाई ? वैसे ठीक ही है उसकी समझ। मैंने उसके लिए किया भी क्या है ? (आँखों से आंचल लगाती है।)

जाई : (परिताप के साथ) आप ऐसा क्यों कह रही हैं माताजी ? आप तो उनकी सर्वस्व हैं। पापा जीवित थे तब मैंने उनके मुँह से कई बार सुना है, "देखो ! तुम्हारी माटी तो बढ़िया है, लेकिन तुम्हारी मूरत तो मेरी मैया के हाथों ही गढ़ी जानी चाहिए। मेरी पत्नी हूबहू मेरी मैया जैसी ही सुघड़ हो। उसमें मुझे एक रत्ती की भी कसर नहीं चाहिए।"

ललिता . (अपना चेहरा ढककर सिसकते हुए) हे भगवान ! मेरे प्रभु !

(इतने में ही बाहर से प्रियरंजन और उसके साथ ही दयाल साहब जल्दी-जल्दी बातें करते हुए आते हैं। उनके आगे-पीछे एक्ज़िक्यूटिव कार्य-कारिणी के सदस्यों में से कुछ—जितमल सेठ, खानझोडे साहब और ब्रिगेडियर कीर्तिकर प्रवेश करते हैं। सब-के-सब बेहद आवेश में हैं। उनमें केवल प्रियरंजन ही शांत और अपने-आपको नियन्त्रण में रखे हुए हैं। इनके प्रवेश का आभास उन आवाज़ों से मिलता है जो इनके बड़बड़ाने से आ रही है।)

खान : नो-नो, दिस इज टू मच ! गज़ब कर दिया उसने !

जितमलसेठ : उसका पूरा बन्दोबस्त करना ही माँगता। टाइम होयला है !

खान : मेरी साफ़-साफ़ सिफ़ारिश है कि अब वक़्त आ गया है कि प्रियरंजन साहब को कोई बढ़िया अंगरक्षक रख लेना चाहिए।

दयाल : अरे, यह तो हमारे ब्रिगेडियर साहब थे इसलिए मुसीबत टल गयी।

विक्रम : अरे, आर्मी में जब हम था तब हमने ऐसा हज़ारों केसेस सम्भाला है।

खान : बट हाऊ कुड ही डेयर ? उसकी हिम्मत कैसे हुई ?

जितमलसेठ : एक्ज़ीक्यूटिव का मीटिंग में वह घुसा ही कैसे ?

खान : दैट इज़ व्हाट आइ से !

प्रियरंजन : क्या बातें करते हैं मिस्टर खानझोडे ? उसका दिमाग़ सही है ? इनफ-इनफ'''बस। इनफ, इनफ, कोई बड़ा भारी अनर्थ तो नहीं हो गया है ? (इस अंतिम उद्गार के साथ प्रियरंजन अपनी पीठ किये हुए आते हैं और दरवाज़े से ही सबको चुप रहने का इशारा करते हैं। इस बीच जाई और ललिता चौंककर उठ खड़ी होती हैं। ललितागौरी दौड़ती-सी झट आगे आकर पूछने लगती है—)

ललिता ' क्या हो गया प्रियरंजन ?

प्रियरंजन : विशेष कोई बात नहीं है ललिताजी !

खानझोडे : विशेष कैसे नहीं साहब ?

प्रियरंजन : (डाँटते हुए) खानझोडे साहब !

जितमलसेठ : किसी के पेटमन्दी जिस वखत छुरा खुपसेगा तब पता चलेंगा।

प्रियरंजन : (चिढ़कर) जितमलसेठ !

ललिता : आखिर ऐसा हुआ क्या है ? (सब प्रियरंजनदास के चेहरे की तरफ

देखते हुए चुप रहते है तब—) दयालजी ! आप तो कुछ कहिए !

दयाल : सच कहूँगा ! आपका सुहाग बहुत बलवान है मालकिन साहिबा ! इसीलिए...

प्रियरंजन : (डपटकर) दयालजी !

ललिता : (अधिकार वाणी से) प्रियरंजन ! आप उनसे डांट-डपट मत कीजिए। इस घर में अगर मुझे कुछ अधिकार है, यदि कोई महत्त्व बाक़ी है, तो मुझे मालूम होना ही चाहिए कि आखिर हुआ क्या है ?

प्रियरंजन : (रुककर—अपना रुख बदलते हुए) ठीक है, सुनाइए। (वैसे ही सब एकदम अपनी-अपनी हाँकने लगते हैं तो शोर मच जाता है। तब अपना हाथ उठाकर सबको खामोश करते हुए डपटकर...) हमने सिर्फ़ दयाल साहब को इजाज़त दी थी। एज़ ए मैटर आफ़ फ़ैक्ट, सही मानें में आप सबको जानना चाहिए कि यह हमारा घरेलू मामला है। अगर यह न होता तो हमारी मीटिंग चलते समय कोई ऐरा-गैरा भीतर कदम भी नहीं रख सकता था। यह तो सिर्फ़ वह था, इसलिए किसी ने उसे नहीं रोका। क्यों जितमलसेठ ? सच है न ?

जितमल : सच होएगा ! ये बराबर हाय साहेब तो भी !

प्रियरंजन : यहाँ आप सब बड़ी शान के साथ, लम्बी-लम्बी डींग हाँकने को तैयार हैं, मगर उसके हाथ का छुरा देखकर तो सबकी बोलती बन्द हो गयी थी। उसकी सारी बौखलाहट-बड़बड़ाहट आप लोगों ने चुपचाप सुन ली। आप लोगों को तो जान के लाले पड़ रहे थे। आप में से दो-तीन तो टेबल के नीचे जा घुसे और खानझोडे साहब, आपने तो छूमन्तर होने की भी कोशिश की थी !

कीर्तिकर : फिर भी सर, उसके हाथ से हमने ही छुरा हासिल किया था।

प्रियरंजन : एक्सक्यूज़ मी ब्रिगेडियर कीर्तिकर ! आप कुछ गलत-सलत बयान दे रहे हैं ! आपने उसके हाथ से छुरा नहीं झपटा था, जो कुछ उसे कहना था वह सारा कह चुकने के बाद, उसने वह छुरा टेबल पर खुद फेंक दिया था और आपने उसे फौरन उठा लिया।

कीर्तिकर : ऑफ कोर्स ! यकीनन ! बट ऑफ्टर ऑल आइ एम......आखिर मैं एक...

प्रियरंजन : रिटायर्ड फ़ौजी अफसर हैं, बस ! दैट्स ऑल ! इसका यह मतलब नहीं होता कि आप किसी भी असाधारण वीरता के लिए विशिष्ट पदक प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं। आप इस धोखे में मत रहिए। आज वह यकीनन हमारी जान ले सकता था। लेकिन उसके पास इतना साहस नहीं था। हो सकता है हमें मारने का उसका इरादा ही न

हो। उसे केवल अपने मन में भरा हुआ नफरत का जहर उगलना था, इसलिए वह सब कुछ बडबड़ाकर चलता बना। हम अपनी घरेलू गुत्थी सुलझाने मे समर्थ है। आप हमें यहाँ तक छोड़ने साथ आये इसके लिए हम शुक्रगुजार है। थैंक्स-ए-लॉट। दयालजी जरा यही ठहरेंगे। आप सब जा सकते हैं।

(जितमल सेठ, ब्रिग्रेडियर कीर्तिकर और खानझोडे जाते है तब···) दयालजी।

दयाल : मैं मालकिन साहिबा को सब ठीक समझा दूँगा—हुजूर।

प्रियरजन : हम स्नान कर तैयार होते है। हमें साढ़े सात बजे दिल्ली की फ्लाइट पकडनी है। कल सुबह नौ बजे माननीय उद्योग मन्त्री महोदय से हमारा अपाइन्टमेंट······

दयाल : वह सब तय कर रखा है हुजूर।

प्रियरंजन : दैट्स गुड! (फिर अचानक ललितागौरी के कन्धो पर हाथ रखकर उसे प्रेम से निहारते हुए) ललिताजी, आप हमारी बिल्कुल चिंता न करे। हम कल रात तक लौट आयेंगे।

ललितागौरी : आप कह रहे है, मैं चिंता न करूँ? आपके साथ मैंने अपनी जीवन-नौका ही सागर मे खोल दी है। फिर कैसे न सोचूँ?

प्रियरजन : न हम डूबेंगे न आपको ही डूबने देंगे इसका पूरा भरोसा रखिए।

ललिता : यह लडका न जाने मुझे क्या-क्या देखने पर मजबूर करेगा···

प्रियरजन : डोंट यू वरी! अगर हमारा अन्दाजा गलत नही है तो वह आज नही तो कल आपसे मिलने अवश्य आयेगा। वह आपसे मिले बगैर रह ही नही सकता। क्योकि इसके सिवा अब उसके पास कोई और चारा नही है। वह चारो खाने चित्त है। सुना है, कल मजदूरो की सभा में तो उसकी अच्छी-खासी मरम्मत भी हो चुकी है।

ललिता : अरे! कही अधिक चोट तो नही आयी?

दयाल : आज तो वह सदस्यों की भरी मीटिंग मे घुस आया था, मालकिन साहिबा! सच कहता हूँ! और वहाँ उसने जो बडबड़ाहट की है, उस पर से तो···

प्रियरंजन : यह विषय इतने महत्त्व का नही है। अगर वह आपसे मिलता है तो आप उससे बडी मधुरता का व्यवहार कीजिए। हम अभी भी नहीं मानते कि उसका दिमाग फिर गया है। आप उसे घर मे ही रुकने का आग्रह कीजिए। उसका भ्रम दूर करने के लिए हमें उसे कुछ कड़वी-गरम सचाइयाँ सुनानी ही होंगी। लेकिन जो कुछ सुनाना है उसे हम स्वयं सुनायेंगे। अगर उसके बाद भी वह कुछ पागलपन करता है, तो फिर हमें कुछ और

ही विचार करना होगा। लेकिन उसे एक मौक़ा तो जरूर मिलना ही चाहिए। (मुड़कर) जाई, मेरे नहाने की तैयारी करो···

(कहते हुए वह जल्दी-जल्दी भीतर जाने लगता है तो दरवाज़े पर विक्रम आकर रास्ता रोकता है और सामने बढ़ते हुए बोलता है।)

विक्रम : मुझे मौके की जरूरत नहीं है, लेकिन मिस्टर स्टेप फादर ! आपकी कड़वी गरमा-गरम सचाइयाँ सुनने के लिए मैं उत्सुक अवश्य हूँ ! यह तो तभी सम्भव है अगर सचाई के साथ अब तक आपका तलाक न हुआ हो !

(विक्रम मैली-सी फटी हुई शर्ट पहने है। उसकी पैंट सिलवटों से भरी है, उसकी आस्तीनें कुहनियों तक मुड़ी हैं। उसकी शर्ट के आधे से ज्यादा बटन टूटे हुए हैं। शर्ट कमर से पैंट में खुंगी हुई। उसकी दाढ़ी मूछ बढ़ चुकी है, सिर के केश अस्त-व्यस्त हैं। सिर पर दो जगह मलहम-पट्टी की हुई है। इस परिवेश में विक्रम खड़ा है। उसे देखते ही ललिता घोर व्यथा से उसे पुकारती है—"विक्रम" और जैसे ही उसके पास दौड़ती है वैसे ही वह बोलता है।)

—दूर रहिए देवीजी, आपसे भेंट करने में अभी देर है। पहले मैं मिस्टर ललितागौरी क्या कहते हैं, वह सुनना चाहता हूँ ?

(फिर जाई की ओर देखकर)

—अच्छा मेरी गमले की पुष्पलता जाई इतनी कुम्हला गयी है ? जैसे एकदम सूख गयी हो ? ओ-हो, तो पत्र पढ़ने का काम हो रहा था ? अब तुम जाओ जाई। तुम्हें अपनी माता की ममता चाहिए। यहाँ की हवा बहुत गरम हो जाएगी—गेट गोइंग···जाइए यहाँ से···

(जाई काँपते हुए वहाँ से चली जाती है। ललितागौरी भी मुँह उतारे पीछे सरकती हैं और निराश होकर बैठ जाती है तब···)

प्रियरंजन : पधारो ! तुम आ गये। बहुत खुशी हुई।

विक्रम : (जेब से ककड़ी निकालकर खाते हुए सामने बढ़ता है।) पहुँच तो गया ही हूँ, अब मेरा आगमन भले ही आपको अरुचिकर लगे, पर उसे रुचिकर ही मानना पड़ेगा। (थूकते हुए) धत् साली यह ककड़ी भी पहले ही कौर में कड़वी निकली (फेंक देता है।) हट ! कड़वी ककड़ी।

(जेब से दूसरी ककड़ी निकालते हुए)

कड़वी ककड़ी की तरह कड़वे आदमी को भी उठाकर फेंक देने की, कोई सुविधाजनक व्यवस्था है क्या दयाल साहब ?

दयाल : (चौंककर) जी ! क्या···क्या···फरमाया आपने हुज़ूर ?

विक्रम : हुज़ूर तो वे हैं—मैं तो हूँ सिम्पली विक्रम—दीन हीन अनाथ यतीम ! हम दोनों शर्त लगाएँ क्या दयाल साहब ? (जेब से रुपये का सिक्का निकाल

कर उसे उछालकर झेलता है।) मैं यह रुपया लगाता हूँ और आप लगाइए अपनी बेटी ! कहिए, कबूल ? तो बताइए यह ककड़ी कड़वी निकलेगी या मीठी ? हांऽऽ—मगर खाऊँगा मैं और कड़वी है या मीठी इसका स्वाद भी मैं ही बताऊँगा। आप हारे तो—जाई हमारी—और अगर आप जीते तो यह रुपया आपका, मजूर ? बोलिए—कड़वी—या—मीठी ?

दयाल : (घबराकर देखते हुए) हुजूर, आप तो मुझ ग़रीब का मज़ाक उड़ा रहे है।

विक्रम : (खिलखिलाकर हँसते हुए) अच्छा ! बहुत बढ़िया ! दैट्स इट। मतलब यह हुआ कि आप 'गरीब, होकर भी अपने पेट की पुत्री को किसी भी प्रकार के जुए मे दाँव पर नही लगाना चाहते—इतनी तो आप मे निष्ठा है ? नॉट बैड—नॉट बैड''; बाकी दूसरी निष्ठाओं के बारे में, हम सुविधानुसार चर्चा करेंगे। (ककड़ी खाते हुए) है कुछ कड़वाहट, लेकिन इस कड़वाहट के रहते हुए भी, इसमे स्वाद और लज्जत है—किसी जारिणी की तरह। परपुरुषगामिनी के बारे में आपका क्या अनुभव है दयाल साहब ? छोड़िए—आप तो बस एक दर्शक है ! जाने दीजिए ! ऐनी वे ! आप कैसे रुक गये साहब ? मेरा मुँह काफी कड़वा हो चुका है। अब आप अपना कड़वा सत्य सुनाइए। हाँ, फायर ! गोलीबारी शुरू'''

प्रियरंजन : दयालजी, मेरा शाम की फ्लाइट से जाना केंसल कीजिए। मैं सुबह की कैरेवान फ्लाइट से रवाना होऊँगा।

दयाल : (तत्परता से) मैं तुरन्त खुद जाकर सारा इन्तज़ाम करता हूँ हुजूर। फौरन'''

प्रियरंजन : नही, नही, आप यही ठहरिए।

विक्रम : (खाते-खाते आँखें मिचकाते हुए) फार सिक्यूरिटी मेजर्स—सुरक्षा हेतु''

प्रियरंजन : दफ्तर मे किसी को फोन कर उसे भिजवा दीजिए।

विक्रम : (फर्र-से एक स्टूल खीचकर उस पर बैठने लगता है।) और जाने से पहले मेरी, सिर से पैर तक तलाशी ले लीजिए। (हँसकर) नही तो फिज़ूल ही मेरे पास छुरा-छुरी न निकल आये।

प्रियरंजन : मैं अपनी रक्षा करने के लिए स्वयं पूरी तरह से समर्थ हूँ। मगर विक्रम, तुम जिस तिपाही पर बैठ रहे हो वह बहुत नाजुक है।

विक्रम : ललितागौरीजी के समान ?

प्रियरंजन : ज़रा सम्भलकर, वह टूट जाएगी।

विक्रम : मेरी तरह ? (हँसकर उठ जाता है।) च-च-च। इन्सान भले टूट जाए, यह तो चलेगा मगर कोई कीमती सामान नही टूटना चाहिए ? लेकिन अब

फिर कहाँ बैठा जाए ?

प्रियरंजन : यहाँ इतनी सीटें हैं चारो तरफ़ ।

विक्रम : मगर मेरी जगह कौन-सी है यही मुझे पता नही चल रहा है । (हँसता है ।) दयालसाहब ? आप बिना किसी चिन्ता के फ़ोन करने जाइए । मैं यहाँ एक उपद्रवहीन तिलचट्टे की तरह दीवार से चिपका खड़ा रहूँगा ।

प्रियरंजन : दयालजी आप जाइए । (दयाल जाता है ।) विक्रम, मुझे तुमसे गम्भीरता के साथ कुछ बातें करनी हैं । वह तभी सम्भव है जब तुम सुनने और समझने की हालत मे हो ...।

विक्रम : अवश्य ! मेरी हालत उतनी खराब नही हुई है, जितनी आप समझते हैं ।

प्रियरंजन : तो फिर तुम शांति के साथ हमारी बात सुनोगे ?

विक्रम : ऑफ़ कोर्स ! निःसंदेह सुनूँगा ! लेकिन एक शर्त जरूर है ! शांति के साथ सुनने के लिए आपको मेरा मुँह बन्द करना होगा अपनी खास इम्पोर्टेड सिगरेट देकर ! कीमत सस्ती है ।

(प्रियरंजनदास अपना सुनहला सिगरेट केस निकालकर उसे फट से खोल, सिगरेट सामने करते है ।)

विक्रम : (उन्हें देखकर) नो थैंक्स । आपकी स्टेट एक्सप्रेस आप ही को मुबारक हो ! मेरी अपनी (जेब से बीड़ी का बंडल निकालकर) बीड़ी ही भली । पिछले दस-पन्द्रह दिनों से बीड़ी मुँह लग गयी है । अब तो आदत पड गयी है उसकी । बीड़ी हो या नारी सब आदत की लाचारी है । (सुलगाकर) मदाम ! विद युअर परमिशन प्लीज ! (कश भरते हुए) हाँ, तो रेडी ? अब अटैक कीजिए...हमला शुरू ।

प्रियरंजन : दोपहर मे तुम बिना किसी वजह, एक्ज़िक्यूटिव की मीटिंग मे घुस आये और तुमने वहाँ जो तमाशा मचाया वह बिल्कुल ही अनुचित था ।

विक्रम : तरीका अनुचित हो सकता है, माना ! पर मेरा विरोध आपके उस शब्द तमाशे के लिए है । महाराष्ट्र में यह तमाशा जनता की एक प्रिय लोक नाट्य कला है, जिसे राज्य की भी मान्यता प्राप्त है ।

ललिता : (उठते हुए) प्रियरंजन ? उससे बातें करने में कोई समझदारी नहीं है । आप...

विक्रम : (कटाक्ष से) श्रीमतीजी ! आप दोनों के सोने का समय तो नहीं हो गया है ?

प्रियरंजन : ललिताजी ! आप ज़रा सब्र से काम लीजिए, अपना मन ख़राब मत होने दीजिए । वह कितने भी व्यंग से क्यों न बोले, तो भी हम

साथ आज बिल्कुल सीधी-सच्ची बातें करेंगे।

विक्रम : साहब। मैं भी आपके साथ वैसी ही सीधी-सच्ची बातें करने के लिए ही आया हूँ। आइ रियली मीन बिजनेस। नगद सौदा—इस हाथ दे—उस हाथ ले। वह सारा प्रकार अनुचित था इसे सिद्ध करने के लिए किसी न्यायाधीश की नियुक्ति करने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन मुझे सारे डायरेक्टरों, एक्जिक्यूटिव—निदेशकों और अधिकारियों से उत्तर चाहिए था; और इसके लिए आपकी उस मीटिंग में घुसे बगैर दूसरा कोई रास्ता ही नहीं बचा था। नहीं तो मुझे ये सारे गिद्ध एक साथ और कहाँ मिलने वाले थे?

प्रियरंजन : सबसे एक साथ मिलकर भी तुम्हें फ़ायदा क्या हुआ? तुम्हारे उन घिनौने आरोपों को सुनकर क्या किसी ने भी उसका जवाब देने के लिए मुँह खोला?

विक्रम : मुँह खोलने के लिए पहले मुँह का होना जरूरी है। आपने तो बस सारे बछिया के ताऊ जमा कर लिये हैं और उनकी नाकों में नकेल लगा कर उन्हें अपना 'जी हुजूर' बना लिया है। फिर वे क्या सफाई पेश करेंगे और मेरे सवालों का क्या जवाब दे सकेंगे!

प्रियरंजन : तुम्हारे पापा से ही हमें ये नकेल के बैल बपौती में मिले हैं। जब तुम्हारे पिताजी जीवित थे, तब सारे 'जी हुजूर' अधिकारी पदों पर थे। मेरे कहने का आशय यह है कि तुम्हें सारे अभियोगों का यदि उत्तर ही चाहिए, तो वह अधिकार हमें है। मैनेजिंग डायरेक्टर की हैसियत से केवल हम ही उत्तर दे सकते हैं।

विक्रम : और कहा जाता है कि सम्राट तो अन्याय और अपराध कभी कर ही नहीं सकता; तो फिर आपसे जवाब की अपेक्षा करना भी एक मूर्खता ही होगी।

प्रियरंजन : फिर भी हम तुम्हारे सवालों का जवाब देने वाले हैं।

विक्रम : तो आप डंके की चोट पर ज़ोर देकर यह कहने वाले हैं कि पापा का कतई खून नहीं हुआ था। वह केवल एक दुर्घटना के शिकार हुए थे।

प्रियरंजन : पुलिस तहकीकात में यह साबित हो गया है कि वह एक दुर्घटना ही थी; मगर वह एक हत्या थी इसकी थोड़ी बहुत सम्भावना हो सकती है, इससे हम इनकार नहीं कर सकते। मगर अपने पापा की मौत से तुम यह जो हमारा दूरस्थ सम्बन्ध जोडने का प्रयास कर रहे हो वह सरासर गलत है; हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं—कहना चाहते हैं।

विक्रम : नहीं तो पापा की मौत से और किसका कल्याण होने वाला था?

प्रियरंजन : और किसी के कल्याण या फ़ायदे के बारे में हम बाद में सोचेंगे, लेकिन हमारे तो कोई भी हित-सम्बन्ध आपके पापा के कारण अटके नहीं थे। तुम अधिकारों के बारे में सोच रहे हो तो वे सारे अधिकार तुम्हारे पिताजी के जीवित रहते भी हमारे ही पास थे। हम ही सारे निर्णय लिया करते थे। हमारे वैभव में आज उनके स्वर्गवास के बाद तनिक भी वृद्धि नहीं हुई है। उसके बजाय न चाही जिम्मेदारी ही हमारे सिर पर आन पड़ी है। तुम्हारे पापा के प्राणपखेरू उड़ने के बाद मैनेजिंग डायरेक्टर का यह स्थान हमें दिया जाएगा, यह बात भी किसी के सपने में नहीं आयी थी।

विक्रम : तो फिर अनहोनी बात होनी में बदल गयी यह तो एक चमत्कार ही हुआ!

प्रियरंजन : कम्पनी-कानून के अनुसार इस कारखाने के सभी शेयर-होल्डरों ने हम पर विश्वास दिखाकर एकमत से इस पद के लिए हमें चुना—यह चमत्कार हो सकता है।

विक्रम : मगर इस चमत्कार के लिए आपको साष्टांग नमस्कार भी करना पड़ा है। अपने कारखाने में काम करने वाले सभी मज़दूरों को अपना सहभागी बनाने की पापा की योजना को आप छोड़ देंगे, यह आश्वासन आपने साझेदारों को लिखकर दिया है। तभी आप···यह···चमत्कार···

प्रियरंजन : तो इसमें अनुचित क्या है? मज़दूरों को सिर्फ़ अपनी तनख़ा से वास्ता है, ज्यादा से ज्यादा बोनस से हो सकता है। मगर मुनाफ़े के साथ उनका कोई वास्ता नहीं है। हमारा यह विचार पहले भी था और आज भी है।

विक्रम : लेकिन जब पापा जीवित थे तब आपकी राय भिन्न थी।

प्रियरंजन : तुम्हारे पापा के जीवित रहते हमारी अपनी कोई राय ही नहीं थी और अगर कोई राय थी, तो वह निजी राय थी। हम कोई शेयर-होल्डर तो थे नहीं, हम तो बस एक ईमानदार अधिकारी थे।

विक्रम : लेकिन पापा अपनी योजना अमल में लायेंगे इसलिए उन्हें पद से हटाने का भी प्रयास किया गया था। कुछ लोगों की यह कोशिश नाकामयाब रही थी—है न?

प्रियरंजन : यह सच है, मगर इसके साथ हमारा कोई वास्ता नहीं था।

विक्रम : वह कोशिश असफल रही तब फिर पापा के सिर पर बीम गिराई गयी।

प्रियरंजन : यह तो एक दृष्टिकोण है। लेकिन जो बात साबित हुई है वह और ही है।

विक्रम : साबित बात इतनी ही है कि आप बहुत-बहुत चतुर हैं।

प्रियरंजन : एक कारखाने के जनरल मैनेजर को चतुर होना ही चाहिए।

विक्रम : लेकिन आप जरूरत से ज्यादा चतुर निकले।

प्रियरंजन : तुम कहना क्या चाहते हो ?

विक्रम : ऊपर चढने के लिए सीढी का आधार लिया जाए और ऊपर पहुँचते ही उसे ठुकराकर दूर फेंक दिया जाए इस होशियारी को दगाबाजी कहते हैं।

प्रियरंजन : तो तुम समझते हो कि हमने तुम्हारे पिताजी के साथ कारखाने के मामले मे यही विश्वासघात किया है ?

विक्रम : केवल कारखाने के मामले मे ही नही घर मे भी।

प्रियरंजन : कारखाने के मामले म क्या घटनाएँ घटी, इसका तो हमने पूरा विवरण दे ही दिया है। अब तुम्हे वह जंचा हो या न जंचा हो···फिर भी···

विक्रम : और घर के मामले मे ?

प्रियरंजन : वह अगर विश्वासघात भी लगे तो भी उससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है। और जो कुछ माता हममे है उसके लिए हमे तुम्हारे पिता की हत्या कराने की कोई जरूरत नही थी। वह सम्बन्ध तो तुम्हारे पिता के जीवित रहते हुए भी हमारे लिए कोई रुकावट पैदा नही करता था।

विक्रम : (मारे गुस्से के उस पर लपक पड़ता है।) दोगले कही के, बदमाश···

प्रियरंजन : (उसे रोकते हुए) यह सवाल तुम्हे पूछना ही नही चाहिए था या कड़वा उत्तर निगलने के लिए पहले ही मन कड़ा कर लेना था। इस बारे मे अगर कुछ और अधिक जानने की इच्छा हो तो तुम्हारी माता और हमारी प्रिय पत्नी श्रीमती ललितागौरी सामने ही हैं, उनसे भी पूछ सकते हो। लेकिन एक बात जरूर ध्यान रखो, कोई उन्माद मत करना। हम दोनो कोई आशिक-माशूक नही विवाहित पति-पत्नी हैं ! अगर समझदारी के साथ मौजूदा हालात से समझौता कर लेते हो, तो इस राजेन्द्रनगर मे तुम्हारे लिए एक उच्चाधिकार पूर्ण स्थान का निर्माण किया जाएगा। लेकिन हमारे खिलाफ़ अगर तलवार ही तानने का इरादा हो, तो···फिर···

विक्रम : अब आप जाइए यहाँ से···स्नान आदि से निवृत्त हो लीजिए ! झटपट···

प्रियरंजन : (उसकी तरफ निहारकर) हमे तुम्हारे आसार अच्छे नजर नही आते हैं।

ललिता : (बीच में टोककर) प्रियरंजन ! आप जाइए। आप मेरी बिल्कुल चिंता

मत कीजिए। यहाँ सब ठीक हो जाएगा।

प्रियरंजन : (उसे देखते हुए) मुझे तो भरोसा नहीं है। खैर देखा जाएगा।

(प्रियरंजन भीतर जाता है। ललितागौरी जैसे ही विक्रम के पास आती है, वैसे ही वह पीठ मोड़ लेता है। वह स्नेह से उसके कंधे को स्पर्श करती है…)

ललिता : विक्रम, बेटा मेरी एक बात सुनोगे ? बेटे…

विक्रम : (कन्धे पर रखा हाथ झटकते हुए) देवीजी……

ललिता : (व्याकुल होकर) अरे…बेटे…मैं तुम्हारी माता हूँ—तुम्हारी माँ…

विक्रम : (पीठ किये हुए) माँ थी—लेकिन अब आप कौन है, यह तय होना बाकी है। (शांति के बाद अचानक उठे आवेग से, मुड़कर) माँ माँ, यह तुमने क्या किया ? क्यों किया ? (फिर फौरन शांत हो जाता है) सॉरी…हे भगवान् ! पुरानी पुकार ज़ुबान से हटती नहीं—नये रिश्ते के शब्द अभी मुँह से तुरन्त निकलते नहीं ! (फिर पीठ फेरकर अपने आपको सम्भालता है, और रूखे और भावना रहित ढग से) देवीजी ! आपने…यह…सब… क्यों किया ? किसलिए ?

ललिता : बेटा, अब यह सब पूछना निरर्थक है। तुम्हे मेरी…

विक्रम : (चीख़कर) नहीं श्रीमतीजी ! इस दुनिया में इस सवाल के समान अर्थपूर्ण और दूसरा कुछ नहीं बचा है कम से कम मेरे लिए…और मेरी दृष्टि से…

ललिता : विक्रम ! अब तुम्हे यह सब भूल जाना चाहिए। मैंने प्रियरंजन के साथ विवाह किया है, बस इतना ही यथार्थ है और तुम्हें…

विक्रम : और इस यथार्थ को मैं अर्थपूर्ण मान लूँ तो…कभी किसी समय शिवशंकर राजेन्द्र से आपने विवाह रचाया था, क्या यह केवल एक स्वप्न था ? उनके साथ आपने तीस साल घर-गृहस्थी चलाई है, एक लड़के को जन्म दिया है, उसका लालन-पालन किया है, उसे नन्हे से जवान किया है—यह सब भी फिर सपने की माया ही होनी चाहिए, है न ? कोरी कल्पना का विलास…

ललिता : बेटा तुम मुझे समझने की कोशिश करो !

विक्रम : (आवेग के साथ) यही तो कर रहा हूँ ! आपको समझने के लिए मैं अपनी जान को इतना हलकान कर रहा हूँ। मेरे प्राण पीड़ा की पराकाष्ठा झेल रहे हैं। इसीलिए मैं आपसे यह सवाल पूछ रहा हूँ, मुझे इतना ही बताओ कि आपने यह क्यों किया ? क्या पापा ने आपसे अपार प्रे… नहीं किया था ? क्या आपके जीवन में कभी एक बार भी उन्होंने आ… बेवफ़ाई की थी ? क्या उन्होंने कभी भी आपको किसी भी तरह …

दी थी ? उत्पीडित किया था ? आपको परेशान किया था कभी ? आप तक किसी तरह की आँच पहुँचने दी थी ? क्या आपके मुँह से बात आधी निकलते ही वह उसे हर तरह पूरी नही करते थे ? क्या वह आपको सदा लाड-प्यार के सरोवर में विहार नही कराते थे ? क्या कभी भी उन्होंने आपके प्रति किसी भी तरह की असावधानी बरती थी ? कभी आपको ऐसा अतृप्त रखा था कि आपकी दृष्टि किसी और पर जाए, आप गैर के मोह में फसें ? बोलिए, कुछ तो उत्तर दीजिए ? फिर उनके साथ आपने ऐसा विश्वासघात क्यों किया ?

ललिता : तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर तो मैं कभी भी नही दूँगी। साथ ही इस महल की चारदीवारी में तुम्हारे पिताजी और मेरा पति-पत्नी का नाता रसातल को क्यों पहुँचा यह भी तुम्हारी माँ होने के नाते मैं तुम्हें कभी नही बता पाऊँगी।

विक्रम : ठीक है। मत दीजिए। मगर पापा कभी भी दुर्जन नही थे। आपके आपसी सम्बन्धो मे भले ही आपको उनमें कुछ कमी नजर आयी हो मगर एक नौजवान बेटे की एक प्रौढ माता ऐसी मरघट की जल्दी से एक ओछे, नीच और कपटी इनसान के गले में हार नही डाल देती है, उसकी कुछ लाज शर्म···

ललिता : बस करो विक्रम—बहुत बोल चुके तुम। यह स्वाभाविक हो सकता है कि तुम्हारे दिल मे अपने पिता के लिए गहरा आदर हो, इसका यह मतलब नही कि तुम प्रियरंजन के लिए ऐसी बेहूदा बातें बोलने के अधिकारी हो। मेरे इस घर में तुम्हारा इस तरह गालियाँ बकना मुझे पसन्द नही होगा।

विक्रम : (चिढकर) आप गलती कर रही है श्रीमतीजी। भले ही आप दुबारा किसी और की गृहिणी बन गयी हो मगर आप इस घर की मालकिन नही हैं। यह घर मेरे पापा का है और मैं अपने पापा के घर मे खडा रहकर आपसे जवाब-तलब कर रहा हूँ।

ललिता : मेरी दृष्टि से तुम्हारे पापा समाप्त हो गये।

विक्रम : (आग-बबूला होकर उसके शरीर पर झपटते हुए उसके दोनो कंधे झकझोर कर) वह समाप्त नही हुए हैं चांडालिनी—तुम दोनों जर-जारिनी ने मिलकर उन्हें समाप्त किया है।

(वह बचाव के लिए चीखती है—"बचाओ-बचाओ। दौड़ो।" तब विक्रम अपनी पकड़ ढीली कर उसे छोड देता है। वह स्तब्ध है, कुछ डरा-सा लगता है। प्रकाश फड़फड़ाने लगता है। विचित्र सुरों का पार्श्व संगीत उभरता है फिर भारी कदमों की ध्वनि—टप-टप-टप—सुनाई देती

है···शिवशंकर राजेन्द्र की प्रेतात्मा आकर दरवाजे पर खड़ी होती है। उसी समय बाहर से बलराज दौड़ता हुआ भीतर आता है। भीतर से दयाल और प्रियरंजन वेग से प्रवेश करते है। उनमे से कोई भी इस भूत को नही देख पाता। वह केवल विक्रम को ही दिखाई पडता है। इसलिए सब विक्रम की सनकी जैसी बातें और अनर्गल उद्‌गार भौचक्के से, उसकी ओर देखकर, सुनते रहते है।)

विक्रम : (थरथराते हुए पीछे सरकता है।) पापा! पापा! आप यहाँ? यहाँ कैसे आये पापा?

(भूत गर्दन उठाकर कुछ बोलने का प्रयास करता है।)

विक्रम : नहीं! नही! पापा मैं उन्हें कोई नुकसान नही पहुँचा रहा था; मगर आपने सुना वह क्या कह रही थी? (भूत गर्दन हिलाकर 'हाँ' का संकेत देता है।) पापा! पापा मैं जान चुका हूँ। आपकी मौत कैसे हुई—मुझे सब पता चल गया है।

ललिता : (उसके पास जाकर मानसिक व्यथा से) बेटा! तुम किससे बातें कर रहे हो?

बलराज : तुम्हें यह क्या सनकीपन सवार हो गया है मेरे दोस्त! कहीं पागल तो नही हो गये हो?

विक्रम : पापा! मुझे शक है···नही नही, अब तो यक़ीन हो गया है, कि आपके सामने, जब आप जिन्दा थे, तभी से माँ का उसके साथ अनैतिक सम्बन्ध चल रहा था। इसीलिए माँ ने मुझे पिछले छः-सात साल जर्मनी में दूर-दूर रखने की अपनी जिद पूरी करवाई थी। सच है न? बोलिए-बोलिए न पापा, सच है न?

(भूत अपनी पीठ फेर लेता है। फिर भी वह उसके चक्कर लगाते हुए पूछता है—"बोलिए—सच है न पापा।")

यह···प्रियरंजन···अपना दूर का रिश्तेदार, एक नौजवान जिसे सरकारी नौकरी में गबन करने के सिलसिले में कैद की सजा हुई थी; उसे जेल से छूटने पर, आपने दया की दृष्टि से अपनाया था, उसे सहारा दिया था, उसे अपनी योग्यता दिखाने का अवसर प्रदान किया था, काम सिखा-कर, होशियार बनाकर उसे बडा बनाया; उसी ने नमकहरामी की है। विष्ठा खाई है इस घर की थाली में! (भूत केवल खेद भरी दृष्टि से देखता है।) नही-नही पापा, ऐसी दयनीय दृष्टि से मत देखिए आप! और कोई न सही मैं तो था आपके साथ आपको सहारा देने के लिए! आपने मुझसे क्यों नही कहा? मुझे जरा भी कल्पना दी होती तो मैं दौड़ा आता। यहाँ आकर मैंने मामले की सारी डोर अपने हाथ में ले ली होती। सारा कार्य-

भार स्वयं सम्भाल लिया होता पापा।

प्रियरंजन : दयालजी, इसका सिर तो नहीं फिर गया है ?

दयाल : सच बोलूं हुजूर ! यह तो मैं पहले ही कह रहा था।

ललिता : विक्रम ! बेटे विक्रम ! बेटेऽऽ···

विक्रम : *पापा ! बस एक बात बताइए ! आपने यह खुल्लम-खुल्ला व्यभिचार* खुली आँखो देखा कैसे ? कैसे सहा ? क्यों···क्यो···क्यों···पापा क्यों ? (भूत अपनी गर्दन झुका लेता है—विक्रम उसके पास जाकर)—पापा। जहाँ आपको रत्ती भर भी दगाबाज़ी नज़र आती थी, वहाँ आप एक खूंखार चीते की तरह उस पर बेहरमी से टूट पड़ते थे···मैंने खुद इन आँखों से यह देखा है। फिर आपने इस विश्वासघात को कैसे सहन कर लिया ? यह बेईमानी आपने कैसे चुपचाप बर्दाश्त कर ली !

(भूत अपनी पीठ फेरकर गर्दन हिलाते हुए जाने लगता है—तब···)

नही पापा, नही—माँ ने मेरी तरफ़ पीठ फेर ली है, मगर आप इस तरह नही जा सकते। आपको मेरे सवालो का जवाब देना ही होगा पापा ! आपको मेरी सौगन्ध है ! मेरे सिर की कसम···!

(भूत दरवाज़े पर रुककर कुछ कहकर चला जाता है। प्रकाश की झिलमिलाहट समाप्त हो जाती है और वह पहले की तरह सामान्य हो जाता है। विक्रम धीरे-धीरे होश मे आने लगता है।)

विक्रम : माँ—सुना तुमने ! क्या कह गये पापा ! "अगर रखवाले तैनात कर, पत्नी का पतिव्रत धर्म टिकवाना पड़े, तो फिर उसका तुरन्त टूट जाना ही अच्छा होता है।"

ललिता : *अरे पागल ! पापा —अब तेरे पापा कहाँ से आ सकते है ?*

विक्रम : तुम्हे नही दिखाई दिये ? उन्होने क्या कहा यह भी···

ललिता : तू हवा मे देखते हुए जो बड़बडा रहा था ?

विक्रम : बलराज ! तुमने तो उन्हे यकीनन देखा ही होगा।

बलराज : नही विक्रम, तुम्हे कुछ भ्रम हो गया होगा।

विक्रम : भ्रम ! नही ! नही ! वह भ्रम नहीं था।

दयाल : सच बोलता हूँ हुजूर, अब सारी बातें सूरज की रोशनी की तरह साफ हैं। यह तो बिल्कुल ही पागलपन का व्यवहार है।

ललिता : विक्रम के मन की हालत ठीक नही है, प्रियरंजन ! इसे किसी अच्छे डॉक्टर को दिखलाना ही पड़ेगा।

विक्रम : (अपने आपसे हँसते हुए) नही-नही, वह सपना नही था···हकीकत है···या···क्या···क्या है···

प्रियरंजन : अब इस बारे में बहस करने के लिए बिल्कुल समय नहीं है ललिता जी ! इसे अपने साथ ले जाइए। आज की रात पूरा आराम करने दीजिए इसे। बलराज, चाहो तो डॉक्टर गिडवानी को फ़ोन कर—उसे यहाँ बुलवा लो। हमारा ख्याल है इसे कोई सेडिटिव देना ही पडेगा। लगता है इसे बहुत रातों से नींद नहीं आयी है। अब हमारे लिए यह तय करना जरूरी है कि इसे किसको दिखाया जाए और कहाँ रखा जाए। आप लोग अब जा सकते है।

ललिता : विक्रम—चलो बेटे···

(ललिता और बलराज, खोई-खोई हालत में बैठे हुए विक्रम को भीतर ले जाते हैं, वह भी चुपचाप चला जाता है। तब—)

प्रियरंजन : समझे दयालजी ! अब ज्यादा देर इन्तज़ार करना आग से खेलने के समान हो जाएगा !

दयाल : सच है हुज़ूर ! आपका हुक्म सर··· आँखों पर···फ़ौरन !

प्रियरंजन : तो फिर फ़ौरन से बेश्तर यह पता लगाओ कि विदेश में सबसे बढ़िया पागलों का अस्पताल कहाँ है ?

दयाल : सच कहता हूँ हुज़ूर ! आपके कहने से पहले ही मैंने पता लगा रखा है।

प्रियरंजन : ऐसे-वैसे नहीं, अपने मन माफ़िक होना चाहिए।

दयाल : यही तो पता किया है हुज़ूर ! अपने मन माफ़िक मेंटल असायलम स्विटज़रलैंड में है।

प्रियरंजन : आई सीऽऽ, हूँ ! समझा, वहाँ से कितने दिनों में भला-चंगा होकर यहाँ आ सकेगा वह ?

दयाल : (साभिप्राय मुस्कराकर) लोग ऐसे अस्पतालों में भले ही अपने पैरों से जाते हैं साहिब मगर उनका चंगे होकर वापिस लौटना······मतलब···है ···कोई बात वहाँ नामुकिन नहीं है हुज़ूर। आखिर वहाँ भिजवाने वाले को ही तय करना पड़ेगा कि लौटना कब मुनासिब होगा।

प्रियरंजन : (मुस्कराकर) हो तो होशियार दयालजी। तो अब हम क्या कर रहे हैं उसे साफ़-साफ़ सुन लो।

(प्रियरंजन दयाल के कंधे पर हाथ रख उसे समझाता हुआ बाहर जाता है—तभी अन्धकार होता है।)

प्रवेश तीसरा

(वही दीवानखाना। पिछले प्रवेश की घटनाओं के बाद कुछ दिन बीत चुके हैं। संध्या समय, दयाल साहब प्रवेश द्वार पर खड़े हैं। भीतर से दो नौकर एक के बाद एक भारी-भरकम पेटियाँ बाहर ले आकर रख रहे हैं। उन्हें देखकर…)

दयाल : अरे, इन पेटियों में इतना वज़न काहे का है?

पहला नौकर : साहब, इनमें ढेर सारी किताबें भरी हैं।

दयाल : सच कहता हूँ! कमाल है। किताऽऽबें? अरे छोटे मालिक वहाँ वियना में इलाज करवाने जा रहे हैं, किताबें पढ़ने नहीं, कि छुट्टी मना रहे हैं और मौज मनाएँगे—! वहाँ उन्हें कोई किताब को हाथ भी लगाने देगा?

दूसरा नौकर : यह हम छोटे मालिक से कैसे कह सकते हैं साहिब?

दयाल : यह भी सच है! ऐसा करना—मेटाडोर में किताबों की ये पेटियाँ एक तरफ़ जमाकर रखना। छोटे मालिक से कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं है लेकिन इतना ज़रूर ध्यान रखो कि वे सारी पेटियाँ वापिस लानी हैं बस!

पहला नौकर : छोटे मालिक हम पर बरस पड़ेंगे साहिब!

दयाल : अरे, जब लौटेंगे तब ही तो…बहुत दिन लगेंगे उस बात को। उनसे क्या कहना है यह मैं देख लूँगा। तुम मेरा हुक्म मानने का ख्याल रखो—हवाई-अड्डे पर अपनी अक्ल के दिये जलाकर नया बखेड़ा मत खड़ा कर देना, समझे? चलो—उठाओ—ले जाओ बाहर…

(दोनों नौकर पेटियाँ उठाकर बाहर ले जाते हैं। दयाल उन्हें देखते हुए विचारों में खो जाते हैं और वहीं खड़े रहते हैं। इतने में ही भीतर से ब्रिगेडियर कीर्तिकर और खानझोडे बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।)

कीर्तिकर : डेंजरस—वैरी डेंजरस मैन! बड़ा खतरनाक आदमी है।

खानझोडे : हवाई जहाज़ सीधी तरह वियना पहुँच पाएगा, इसमें भी अभी तो संदेह है।

दयाल : अब क्या उलझन पैदा हो गयी कीर्तिकर साहब? छोटे मालिक से मुलाकात हो गयी आपकी?

कीर्तिकर : हाँ, हो तो गयी। मगर जब हम उन्हें अपनी शुभेच्छाएँ देने लगे तो उन्होंने झट अपनी अलमारी खोलकर अपनी पिस्तौल ही बाहर निकाल ली।

दयाल : अरे बाप रे ! और पिस्तौल तान दी आप पर ?

खानझोड़े : पिस्तौल तानी तो नहीं। हमारे सामने पिस्तौल की सफ़ाई शुरू कर दी। मैंने पूछा, यह सब क्या मामला है मालिक ? तो वह बोले, "मैं दयालजी के नक्शे-कदम पर चलकर अपने आपको अक्ल का ठेकेदार बनाने की कोशिश कर रहा हूँ। ऊँट पर सवार अक्ल का ठेकेदार।"

दयाल : मेरे पदचिन्हों पर चलकर... और बनेंगे...अक्ल के ठेकेदार ? मतलब क्या हुआ ?

खानझोड़े : अक्ल के ठेकेदार—उन्होंने मतलब समझाते हुए कहा—जंगली सियार के ताऊ होते हैं...।

कीर्तिकर : मैंने पूछा, क्या आप यह पिस्तौल साथ लेकर प्रवास करने वाले है ? तो मालिक मुझसे ही पूछते है—"तो साहब, बग़ैर उसके हवाई जहाज हाइजैक कैसे होगा ?

दयाल : हाइजैक—हवाई जहाज को ?

कीर्तिकर : मैंने कहा—आपको हवाई जहाज को हाइजैक किसलिए करना है तो वह बोले, "बग़ैर हाइजैक किये हवाई जहाज अरबिस्तान के रेगिस्तान मे कैसे उतर पाएगा ?—बस वह सब मैंने तय कर लिया है। कल हम होंगे अरबी रेगिस्तान में—और वहाँ मिलेगा हमें रेगिस्तान का जहाज और पहुँच जाएगा हमारा मिजाज सातवें आसमान पर, एक ऊँट पर सवार अक्ल के ठेकेदार की तरह।" इतना कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़े।

दयाल : सच बोलता हूँ कीर्तिकर साहब, उनकी बातें तो आप एक कान से सुनिए दूसरे से निकाल बाहर कीजिए—कभी मन पर असर मत होने दीजिए। छोटे मालिक का दिमाग है कहाँ ठिकाने पर ?

खानझोड़े : मगर ऐसे सिरफिरे लोग ही हवाई जहाज में हँगामा मचा देते हैं दयालजी !

दयाल : अजी, आजकल हवाई अड्डे पर, सच कहता हूँ, ऐसी कसकर तलाशी ली जाती है, कि नानी याद आ जाती है, जानते हैं आप खानझोड़ेजी ! और फिर मैं भी तो उनके साथ जा ही रहा हूँ !

खानझोड़े : देखिए आप अपनी जानिए ! हमने तो आपको सतर्क करने का कर्त्तव्य पूरा कर दिया है। बी केयरफुल।

कीर्तिकर : चलिए खानझोड़े साहब, वहाँ दफ्तर में बड़े साहब हमारा इन्तजार कर रहे होंगे।

(कीर्तिकर और खानझोडे जाते है। दयाल कुछ क्षण विचारमग्न होता है फिर दरवाजे पर जाकर पुकारता है—"गफ़ूर"। आवाज सुनते ही पहला नौकर सामने आ खडा होता है।)

दयाल : ड्राइवर से कहना गाडी पीछे की तरफ लाकर खड़ी करे और फिर सारी पेटियाँ-बैग वगैरह बाहर निकालकर खोलकर रखो। मुझे उन सबकी तलाशी लेनी है।

गफ़ूर नौकर : जी हुजूर! (*गफूर सलाम करके जाता है। दयाल विचार करते हुए फोन के पास जाकर रिसीवर उठाते है—तभी विक्रम का प्रवेश।*)

विक्रम : फरमाइए दयालजी—अरब देश के रेगिस्तान में उतरकर फिर ऊँट पर सवार होकर मुसाफिरी पूरी करने का हमारा इरादा आपको कैसा लगा? एकदम फैन्टस्टिक है या नही?

(विक्रम पेंट और बुशर्ट की सुव्यवस्थित वेशभूषा में है। उसके पीछे-पीछे बलराज भी आता है। उसकी मुखाकृति गम्भीर है। दयाल उन्हे देखकर घबरा जाता है और रिसीवर नीचे रख देता है।)

दयाल : यह ऊँट की पीठ पर सवार होकर सफर करने की आपको क्या सनक सवार हो गयी है साहब? यह भी कोई आपका शरारत भरा मजाक तो नही है?

विक्रम : न यह शरारत है न मजाक़ है, न कोई सनक है न खब्तीपन, यह आपके ढांचे में ठीक ठसकर बैठ सकने वाली एक तीसमारखाँ तजवीज़ है।

दयाल : मगर साहब, जहाँ हवाई जहाज से सीधी उड़ान भरी जा सकती है वहाँ यह घनचक्करी प्राणायाम किसलिए—

विक्रम : दैट्स इट! मेरे सामने भी ठीक ऐसा ही सवाल उठ खड़ा हुआ है। अपने देश में एक से बढ़िया एक असायलम होते हुए भी आपने यह वियना का अस्पताल किसलिए चुना होगा? और जब आपने चुनने की धुन पूरी कर ही ली है तो फिर वहाँ पहुँचने के लिए भी उस समझदारी को सुरखाब का पर लगाने वाला हमारा सफर भी होना चाहिए। क्यों बलराज? (हँसता है।)

दयाल : अब साहब आप भले ही उस इंतजाम की खिल्ली उड़ाएँ, मगर मैं सच कहता हूँ, बहुत सोच-समझकर, केवल आपके भले के लिए, यह सारी व्यवस्था की गयी है।

विक्रम : अच्छा! अच्छा! मेरे ही भले के लिए—है न? य'''यह तो मैं बिल्कुल भूल ही गया था। तो फिर दयाल साहब—वे सारी पेटियाँ और बैग, सूटकेस आप खुद ही अपने ही हाथों तलाशिए, मेरे भले के लिए और सारा गोला बारूद आप खुद ही निकाल फेंकिए।

दयाल : गोला बारूद ! मगर उन पेटियों में तो किताबें भरी···हैं···ऐसा वह······

विक्रम : सही कह रहा था। मगर पुस्तकें भी तो गोला-बारूद से कम नही होती, यह क्या आप नही जानते ? (तब तक तेजी से जाई प्रवेश करती है।) हाँ ! यह आ रही है मेरी अनमोल कली जाई !

दयाल : जाई, तुम यहाँ क्यों आयी हो ?

विक्रम : आपके सौंपे हुए काम को अन्जाम देने के लिए।

दयाल : काम ? मैंने कौन-सा काम सौंपा था ?

विक्रम : दयाल साहब ! यह आपकी ऊँट चढ़ी अक्लमंदी का एक और सबूत है। अरे किस पर कौन खुफिया जासूस रखा जाए इसका भी कुछ तारतम्य तो होना चाहिए !

दयाल : (घबराकर) स···स···साहब···आपको···कुछ···गलतफहमी हो रही है।

विक्रम : नहीं दयालजी ! मेरी यह गलतफहमी नही, बिल्कुल सही है। और अगर किसी ने आकर मुझसे कुछ कहा भी हो, तो भी उसकी बातों में आ कर, किसी का बनता काम बिगाड़ने वाला, बदतमीज मैं नहीं हूँ। जाइए आप पहले सारे माल-असबाब की पूरी तलाशी ले लीजिए—जाइए···

(दयाल जल्दी-जल्दी निकल जाता है। विक्रम सोफ़े पर बदन ढीला कर लेट जाता है, सिगरेट सुलगाकर कश खीचता और धुआँ छोड़ता है।)

विक्रम : सो दैट्स दैट !

बलराज : विक्रम, यह सब तुम कर क्या रहे हो ?

विक्रम : जिसे समझदार लोग पागलपन समझते है—जरा उसका रसास्वाद कर रहा था। बलराज, सच ही मैं अपने पागलपन का आनन्द ले रहा हूँ। आइ एम इन्जॉइंग माइ मॅडनेस !

जाई : बातें न बनाओ विक्रम ! तुम बिल्कुल पागल नही हो। तुमको कुछ नहीं हुआ है।

विक्रम : जाई, प्रज्ञ और पागल में केवल एक सर्पाकार सीमा रेखा खड़ी है, जो कभी इधर मुड़ती है तो कभी उधर। इसी रेखा पर मेरी कसरत चल रही है।

जाई : मगर इसका नतीजा कितना भयानक होने जा रहा है !

विक्रम : भयानक से भयानक तो पहले ही हो चुका है, कब का। जिस घर को जी-जान से सम्भाला उस पर अगर बिजली टूट पड़े और वह धराशायी हो जाए, तो फिर बचता ही क्या है ! अब कितनी भी जी-तोड़ भागदौड़ की जाए—कशमकश की जिन्दगी जी जाए—फिर भी सोने के लिए वही जमीन

मिलेगी—ऊबड़-खाबड़, नहीं तो ऊसर-धूसर और सिर पर ओढ़ने के लिए होगा वही आसमान, कभी छटे बादलों वाला, कभी घिरी घटाओं वाला···

जाई : विक्रम, अगर तुम यहाँ से जाओगे तो फिर लौटकर कभी वापिस नहीं आ पाओगे। मुझे कभी तुम्हारी झलक भी नसीब नहीं होगी।

विक्रम : इसके लिए मेरी ओर से कोई शिकायत नहीं रहेगी।

जाई : तो क्या तुम अपनी सारी जिन्दगी एक पागल की तरह पागलखाने में बिताने वाले हो ?

विक्रम : जाई, अगर जीवन का प्रयोजन ही समाप्त हो जाए तो जीने की जिद भी डूब जाती है। फिर इनसान अपने लिए ही पराया बन जाता है। इस परायेपन को देखने की जब आदत पड़ जाती है, तो फिर चारों तरफ़ पागल ही पागल नज़र आते हैं—जैसे उनका बाज़ार भरा हो। भीतर देखो या बाहर, चारों तरफ़ तमाशा ही तमाशा देखने को मिलता है—ऐसा मनोरंजन मैंने अपनी मर्ज़ी से मजूर करना तय किया है।

जाई : एक तुम्हारी माताजी ने तुमसे विश्वासघात किया इसलिए क्या दुनिया से सारी भलमनसाहत ही उठ गयी है ?

विक्रम : अकेले माँ की ही बात नहीं है, पापा के सहयोगी भी बड़े ही चालबाज़ और दगाबाज़ साबित हुए। जिनके भले के लिए पापा ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी, वे मज़दूर और उनके नेता भी, अपने मतलब के लिए, वफ़ादारी के घुन बन चुके हैं। इस घुन लगी हुई दुनिया में आज बहादुरी भी बाँझ बन गयी है।

बलराज : मेरे दोस्त, तुम बहुत गलत दृष्टि से विचार कर रहे हो। विचार करने का तुम्हारा तरीका माँ की उँगली पकड़कर चलने वाले बालक के समान है और या यह उस नासमझ किशोर के जैसा है जो अपने माता और पिता में अपना रूप देखने में अपने आपको धन्य मानता है। यह दृष्टि किसी समर्थ और स्वतंत्र सोच वाले नौजवान की नहीं है। विक्रम, क्या तुम बुद्धि से कभी भी प्रौढ़ नहीं बनोगे ?

विक्रम : (चौंककर रुक जाता है और अपनी सिगरेट बुझा देता है।) बलराज ! मेरे दुख का मेरी प्रौढ़ता से क्या सम्बन्ध है ?

बलराज : विक्रम, मैं तुम्हारा दुख समझ सकता हूँ। मगर तुमने यह बीमारी अपने ही हाथों मोल ली है, अपने हठ के कारण, और वह भी केवल इसलिए कि तुम असलियत से घबराकर भाग जाने की जानलेवा कोशिश कर रहे हो।

विक्रम : कौन-सी असलियत ?

बलराज : तुम्हारी माँ और तुम्हारे पिताजी तुम्हारा भूतकाल है। कब तक

तुम अपने बीते हुए समय की समाधि को खोदते रहोगे ?

विक्रम : तुम भूल रहे हो बलराज, भविष्य की बहार का आधार भूतकाल में फैली हुई जड़ों पर ही रहता है। मुझे जो माँ-बाप नसीब हुए'''

बलराज : ज़रा रुको विक्रम—कोई भी अपने माँ-बाप चुन नहीं सकता। आखिर हर एक को उन्हें स्वीकार करना ही पड़ता है। इसलिए वे किसी के भी जीवन का उद्देश्य नहीं बन सकते। हर एक को अपना हेतु चुनना ही होता है। जीवन का प्रयोजन प्रत्येक को स्वयं ही तय करना पड़ता है। कड़ी मेहनत से उसे उस मकसद को हासिल करना होता है। तुम्हारी माँ का दुराचार ही बस तुम्हारे सिर पर भूत बनकर सवार हो गया, मगर तुम पर अपनी जान न्यौछावर करने वाली यह निष्पाप जाई तुम्हें नजर नहीं आयी ? सारी दुनिया को घुन लग गया है, ऐसी टिप्पणी करते समय तुम्हारी आँखों के सामने राजेन्द्रनगर के हजारों लोग घूम गये, उनकी फौज की फ़ौज तुम्हें याद आ गयी मगर सदा तुम्हारी छाया की तरह तुम्हारा साथ देने वाला, पीठ पर तैनात, अपना भोला-भाला साथी तुम्हें याद नहीं आया। विक्रम, तुम्हीं बताओ यह कहाँ का इन्साफ़ है मेरे यार ?

विक्रम : (स्तब्ध होकर चक्कर काटता है—फिर) हूँ ऽ ऽ, बड़े मार्के की बात है दोस्त, इसमें सार अवश्य है लेकिन'''(रुकता है और फिर विचारों में खो जाता है।)

बलराज : (प्यार से पास जाकर) तुम्हें कुछ नहीं हुआ है विक्रम, बस मन पर छाई इस बेसुधी को झटक दो और फिर अपना भविष्य निर्माण करने के लिए, अपनी तकदीर को तदबीर से फिर खड़ा करने के लिए कमर कसकर सीना तान लो यार'''फिर खड़े हो जाओ एक सुमेरु पर्वत की तरह'''

विक्रम : हाँ दोस्त ! सुमेरु पर्वत-सा सामर्थ्य मुझे सिद्ध करना ही होगा। अगर मुझे अपनी तदबीर से अपनी तकदीर बनानी है—अपना भविष्य स्वयं ही गढ़ना है, तो फिर यह तय है कि मैं इस राजेन्द्रनगर में क्षण भर भी नहीं रुकूँगा—मैं अपने पिता द्वारा कमाई गयी दौलत की एक पाई भी नहीं अपनाऊँगा। मुझे शून्य से अपना श्रीगणेश करना होगा। जाई, आगामी कल बहुत ही मुश्किल होने वाला है।

जाई : तो मुझे भी तुम कोई छुईमुई मत समझो विक्रम, जो मुसीबत की तर्जनी देखकर ही मुरझा जाए—अब मैं न अल्हड़ हूँ न ही नासमझ। तुम जिस पल मुझे कहोगे उसी पल मैं, जिधर तुम कहोगे उधर चलने के लिए फौरन तैयार हूँ।

विक्रम : मोह में मत रहना। उलटे प्रवाह के साथ टक्कर लेते समय दम उखड़ने का डर रहता है; तब कोई मदद करने नहीं आयेगा। यह शंकर का धनुष अगर न सम्भला तो मेरे साथ उन्हें भी कुचल डालेगा।

जाई : तुम्हारे सिवा अब मेरा अपना दूसरा कोई अस्तित्व है भी नहीं विक्रम ! हम दोनों का जो कुछ होना हो साथ ही हो जाए।

बलराज : सिर्फ़ तुम दोनों का ही नहीं हम तीनों का…

विक्रम : यही होगा मेरे दोस्त—अब अगर तुमने चाहा भी, तो अब तुम्हें पीछे नहीं रहने दूँगा। जाओ जाई—तुम खुद जाकर माँ साहिबा को बुला लाओ। मुझे प्रियरंजनदास से कोई सरोकार नहीं है। लेकिन बलराज, तुम कम से कम दयाल साहब को तो साथ ले ही आओ। सबसे साफ़-साफ़ बातें कर मुझे ऊँचा सिर किये हुए इस नगर से विदा लेनी है।

(जाई भीतर और बलराज बाहर जाते हैं।)

विक्रम : (विक्रम चारों तरफ़ देखकर स्वगत)

नमस्ते—मेरे पिता—होता हूँ मैं विदा !
भूतकाल रूपी मगर के जबड़ों से मुक्त होकर,
खड़ा हूँ मैं भविष्य की दहलीज पर !
मगर यह वर्तमान की शिला डगमगाती है;
फिर भी सामना करना है प्रचंड आह्वानों का,
खड़े हैं सामने जो, चट्टानों की करारों से।
आप भी थे कभी खड़े ऐसी डगमगाती शिला पर
चिप्पी-चिप्पी चढ़कर, पहुँचे थे आप चट्टानों के सर।
मगर हाय ! शिखर पर चढ़कर, साँस लेने से पहले,
टूट गिरे थे नीचे धड़ाम से।
किसी ने नहीं दिया था सहारा, नहीं सम्भाला हाथ से भी,
पड़ी थी आपके हाथ एक नागिन पीली-पीली जर्द सी,
केवड़े की कली समझ कर उठा लिया था आपने जिसे,
और कदम-कदम पर सहते गये, आप उसके विषैले दंश,
घिसटते रहे जिन्दगी, आखिरी दम तक।
न जाने, मेरे नसीब में भी क्या लिखा है आखिर ?
कहते हैं सुमेरु चढ़ते-चढ़ते मिल जाता है जब साथ चंद्र माधवी का
तो क्षितिज से चाँद भी उतर आता है इक टेर पर,
फिर ठोकरें खाकर भी तोल नहीं छूट पाता है;
सारी वेदनाएँ भी हो जाती हैं, शीतल-सौभाग्यमयी

क्या यही हो सकता है सार मेरा जिन्दगी जीने का ?
क्या यही होगा सारांश सारे जीवन का ?

(अपने आपसे बातें करते हुए विक्रम विचारों में खो जाता है। इतने में वह आवाज से चौंक उठता है। क्योंकि उस समय जाई ललिता को साथ लेकर आती है। आते समय वह जाई से पूछती है, "मगर यह सब कब तय हुआ है ? किसने तय किया ? और फिर आखिर जा कहाँ रहे हो ?" उसी समय बाहर से बलराज, प्रियरंजनदास और दयाल जल्दी-जल्दी भीतर आते हैं। आते समय प्रियरंजन कह रहे हैं···)

प्रियरंजन : सिली नानसेंस ! अब सारा इंतजाम रद्द कैसे हो सकता है ? हम नहीं समझते कि इसमें बगैर डॉक्टर की सलाह लिये कोई तबदीली की जा सकती है।

(भीतर पहुँचते ही विक्रम का रुख देखकर सब अपने आप खामोश हो जाते हैं। बलराज और जाई अपने आप विक्रम की दाहिनी और बायीं तरफ खड़े हो जाते हैं और दयाल और ललितागौरी उनके सामने। उनकी पीठ पीछे प्रियरंजनदास खड़ा है। कुछ क्षणों की स्तब्धता के बाद—)

विक्रम : मैं आपसे बातें करना चाहता हूँ, माँ साहिबा ! आप माँ हैं, इसलिए और दयाल साहिब आप जाई के पिता हैं, इसलिए। जिस थाली में खाया उसी में छेद करने वालों से मुझे इस समय कोई सरोकार नहीं है। माताजी, यह न समझिए कि मैं आपकी बातों का कायल हो गया हूँ···वे तो मुझे कभी भी स्वीकार नहीं होंगी। लेकिन फिर भी मैंने उन्हें समझ लेने और जितना जरूरी है उतना मंजूर कर लेने का निश्चय किया है। और जब एक बार मन मंजूर करने का फैसला कर लेता है तो फिर भले ही खून का रिश्ता तोड़ना मुमकिन न भी हो तो भी साथ रहना तो छोड़ा ही जा सकता है। फिर दुश्मनी की आग दबाए रखने की भी जरूरत नहीं पड़ती, इसलिए माँ, हमारा झगड़ा यहीं समाप्त होता है। अपनी तरफ से मैंने वह खत्म कर दिया है। मैंने आपको फिर से 'माँ' कहकर पुकारा है, आपने इस ओर ध्यान तो दिया ही होगा। मैं आपको मैया कहकर इसलिए बुला रहा हूँ क्योंकि इसके बाद हमारी मुलाकात फिर नहीं होगी। जैसे हमारा झगड़ा खत्म हुआ वैसे ही हमारा रिश्ता भी। इसलिए अब यह पागलपन का रूप बनाये रखने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं रही।

ललिता : (आवेग से पास आती है।) लेकिन बेटे···प्यारे···विक्रम बेटे···

विक्रम : हूँ···हूँ···हूँ, बस दूर से ही माँ साहिबा, अब आगे हम एक दूसरे के

विक्रम : मोह में मत रहना। उलटे प्रवाह के साथ टक्कर लेते समय दम उखड़ने का डर रहता है; तब कोई मदद करने नहीं आयेगा। यह शंकर का धनुष अगर न सम्भला तो मेरे साथ उन्हें भी कुचल डालेगा।

जाई तुम्हारे सिवा अब मेरा अपना दूसरा कोई अस्तित्व है भी नहीं विक्रम ! हम दोनों का जो कुछ होना हो साथ ही हो जाए।

बलराज : सिर्फ तुम दोनों का ही नहीं हम तीनों का•••

विक्रम : वही होगा मेरे दोस्त—अब अगर तुमने चाहा भी, तो अब तुम्हें पीछे नहीं रहने दूंगा। जाओ जाई—तुम खुद जाकर माँ साहिबा को बुला लाओ। मुझे प्रियरंजनदास से कोई सरोकार नहीं है। लेकिन बलराज, तुम कम से कम दयाल साहब को तो साथ ले ही आओ। सबसे साफ़-साफ बातें कर मुझे ऊंचा सिर किये हुए इस नगर से विदा लेनी है।

(जाई भीतर और बलराज बाहर जाते हैं।)

विक्रम : (विक्रम चारों तरफ़ देखकर स्वगत)

नमस्ते—मेरे पिता—होता हूँ मैं विदा !
भूतकाल रूपी मगर के जबड़ों से मुक्त होकर,
खड़ा हूँ मैं भविष्य की दहलीज पर !
मगर यह वर्तमान की शिला डगमगाती है;
फिर भी सामना करना है प्रचंड आह्वानों का,
खड़े हैं सामने जो, चट्टानों की करारों में।
आप भी थे कभी खड़े ऐसी डगमगाती शिला पर
चिप्पी-चिप्पी चढ़कर, पहुँचे थे आप चट्टानों के सर।
मगर हाय ! शिखर पर चढ़कर, साँस लेने से पहले,
टूट गिरे थे नीचे धड़ाम से।
किसी ने नहीं दिया था सहारा, नहीं सम्भाला हाथ से भी,
पड़ी थी आपके हाथ एक नागिन पीली-पीली जर्द सी,
केवड़े की कली समझ कर उठा लिया था आपने जिसे,
और कदम-कदम पर सहते गये, आप उसके विषैले दंश,
घिसटते रहे जिन्दगी, आखिरी दम तक।
न जाने, मेरे नसीब में भी क्या लिखा है आखिर ?
कहते हैं सुमेरु चढ़ते-चढ़ते मिल जाता है जब साथ चंद्र माधवी का
तो क्षितिज से चाँद भी उतर आता है इक टेर पर,
फिर ठोकरें खाकर भी तोल नहीं छूट पाता है;
सारी वेदनाएँ भी हो जाती हैं, शीतल-सौभाग्यमयी

क्या यही हो सकता है सार मेरा जिन्दगी जीने का ?
क्या यही होगा सारांश सारे जीवन का ?

(अपने आपसे बातें करते हुए विक्रम विचारों में खो जाता है। इतने में वह आवाज से चौंक उठता है। क्योंकि उस समय जाई ललिता को साथ लेकर आती है। आते समय वह जाई से पूछती है, "मगर यह सब कब तय हुआ है? किसने तय किया? और फिर आखिर जा कहाँ रहे हो?" उसी समय बाहर से बलराज, प्रियरंजनदास और दयाल जल्दी-जल्दी भीतर आते हैं। आते समय प्रियरंजन कह रहे हैं…)

प्रियरंजन : सिली नानसेंस! अब सारा इंतजाम रद्द कैसे हो सकता है? हम नहीं समझते कि इसमें बगैर डॉक्टर की सलाह लिये कोई तबदीली की जा सकती है।

(भीतर पहुँचते ही विक्रम का रुख देखकर सब अपने आप खामोश हो जाते हैं। बलराज और जाई अपने आप विक्रम की दाहिनी और बायीं तरफ खड़े हो जाते हैं और दयाल और ललितागौरी उनके सामने। उनकी पीठ पीछे प्रियरंजनदास खड़ा है। कुछ क्षणों की स्तब्धता के बाद—)

विक्रम : मैं आपसे बातें करना चाहता हूँ, माँ साहिबा! आप माँ हैं, इसलिए और दयाल साहिब आप जाई के पिता हैं, इसलिए। जिस थाली में खाया उसी में छेद करने वालों से मुझे इस समय कोई सरोकार नहीं है। माताजी, यह न समझिए कि मैं आपकी बातों का कायल हो गया हूँ…वे तो मुझे कभी भी स्वीकार नहीं होंगी। लेकिन फिर भी मैंने उन्हें समझ लेने और जितना जरूरी है उतना मंजूर कर लेने का निश्चय किया है। और जब एक बार मन मंजूर करने का फैसला कर लेता है तो फिर भले ही खून का रिश्ता तोड़ना मुमकिन न भी हो तो भी साथ रहना तो छोड़ा ही जा सकता है। फिर दुश्मनी की आग दबाए रखने की भी जरूरत नहीं पड़ती, इसलिए माँ, हमारा झगड़ा यहीं समाप्त होता है। अपनी तरफ से मैंने वह खत्म कर दिया है। मैंने आपको फिर से 'माँ' कहकर पुकारा है, आपने इस ओर ध्यान तो दिया ही होगा। मैं आपको मैया कहकर इसलिए बुला रहा हूँ क्योंकि इसके बाद हमारी मुलाकात फिर नहीं होगी। जैसे हमारा झगड़ा खत्म हुआ वैसे ही हमारा रिश्ता भी। इसलिए अब यह पागलपन का रूप बनाये रखने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं रही।

ललिता : (आवेग से पास आती है।) लेकिन बेटे…प्यारे…विक्रम बेटे…

विक्रम : हुँ…हुँ…हुँ, बस दूर से ही माँ साहिबा, अब आगे हम एक दूसरे के

लिए असंगत हो रहे हैं। पराये तो पहले ही हो चुके हैं। दयाल साहब, पिछले कुछ दिनों से एक पागल का जामा पहनकर मैंने आपके लिए काफी हंगामा खड़ा किया, खूब नश्तर चुभोये हैं, आते-जाते आपकी जी भरकर खिल्ली उड़ाई है। फिर भी भाले और तलवार की तरह फेंके गये मेरे वैन आपके पीछे छिपे हुए आपके मालिक पर वार थे। यह आप भले ही न समझे हों शायद, कि मेरा निशाना आप नहीं थे, मगर आपके हुजूर यह बात जरूर समझ चुके हैं, यह मैं जानता हूँ। आप तो एक ईमानदार चाकर हैं। लेकिन मालिक के बदलते ही आपकी ईमानदारी भी करवट बदलती है, यह बड़े मार्के की चाल है। फेयर एनफ! प्यादा भी तिरछी चाल चलने लगता है। वैसे मुझे आपको उलाहने देने की कोई वजह ही नहीं थी। मगर आज आपसे निवेदन कर रहा हूँ कि मैं आपकी सुपुत्री जाई से शादी कर रहा हूँ।

दयाल : लेकिन छोटे साहब···

विक्रम : नहीं-नहीं, आपसे मैं इसकी इजाजत वगैरह कुछ नहीं चाहता। कार्य सिद्ध करने के लिए मैं और मेरा मालिक समर्थ है। अगर कभी आपको अपना मालिक बदलने की इच्छा हुई तो आप अपनी बिटिया की नौकरी में जरूर पधारिए! वहाँ आपका सदैव स्वागत है। आप और आपके मालिक महोदय ने पागल करार देकर मुझे पूरे जीवन के लिए विदेश के पागलों के अस्पताल जैसे फौलादी कारागर में आजीवन कैदी बनाने की सुन्दर साजिश की थी। मगर मैंने उस व्यूह-रचना को ध्वस्त कर दिया है। फिर भी आप तथा आपके स्वामी को पसीने से सराबोर होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं यह घर-द्वार, यह सारी धन-दौलत, सब कुछ छोड़कर जा रहा हूँ। बस एक पोशाक पहने राजेन्द्रनगर को राम राम कह रहा हूँ—अपनी मर्जी से पूरे होश हवास में, बिना किसी नशे-पानी से मदहोश हुए, मैं इस सारी मिल्कियत का अपना पैदाइशी हक छोड़कर जा रहा हूँ। बस साथ ले जा रहा हूँ—ये दो नगीने, हीरे के समान इनसान, मेरे जीवन को प्रयोजन देने वाले ये दो प्राणी—मेरी जान यह जाई और मेरा जानी दोस्त—यह बलराज···

दयाल : छोटे साहब, मैं सच कहता हूँ, आप गलत कदम उठा रहे हैं। इस हालत में आपको अकेले कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं करनी चाहिए। आजकल पास में टका और हाथ में ताक्त हुए बगैर किस्मत नहीं आजमाई जाती हुजूर!

प्रियरंजन : आप उसे क्यों रोक रहे हैं दयालजी? अगर वह जाना ही चाहता है तो शौक से जाने दो। जन्म भर ममता की छाया में पले इस मृगछौने को

दुनियादारी की धधकती लपटों में जरा झुलसने तो दो। तब सारा शौक शोक बन जाएगा।

विक्रम : दयाल साहब, लगता है अपनी सहचरी की सहायता से इस सिंहासन पर आरूढ़ यह कल का आश्रित, कृतघ्न सियार बहुत ही वाचाल हो गया है। उससे कह दीजिए कि मेरे पिता शिवशंकर राजेन्द्र अपने पिता के अकिंचन निवास से एक दिन ऐसे ही निकले थे, अकेले और अकांचन···मैंने इस माँ की कोख से जन्म भले ही लिया हो, मगर मेरी नस-नस में उस पुरुषार्थी पिता का रक्त बह रहा है। वह खून मुझे अपनी तकदीर बनाने की तदबीर भी सिखाएगा। उसकी चिन्ता आप मत कीजिए। मैंने ही अपने आपको इस महासागर में स्वयं झोंक दिया है। अगर मैं असली काठ से बनाया गया होऊँगा तो अवश्य ही तैरूँगा और अगर पत्थर से तराशा गया होऊँगा तो फिर डूबूँगा ही !·· नहीं, फिर तो मुझे डूब मरना ही चाहिए—है न ? (हंसता है।) चलो जाई—चलो बलराज, अब हम कूच करें।

(वह दोनों के हाथ पकड़कर जाने लगता है, इतने में···)

ललिता : (आवेग के साथ) रुको मेरे बेटे—इस तरह मत जाओ—यहाँ रहकर तुम जो चाहे सो करो, कोई भी तुम्हें किसी तरह की रोक-टोक नहीं करेगा। मैं तुम्हें वचन देती हूँ। अरे, इतनी-सी बात के लिए क्या तुझे अपना घर छोड़ देना चाहिए ?

विक्रम : (रुककर मुड़ता है।) हाँ-हाँ-हाँ, यह शापित, पतित और पिता की तड़पड़ाहट से कलुषित महल मुझे छोड़ना ही चाहिए। भले ही मुझे सारी जिन्दगी जंगलों में भटकते हुए और बनवास की धूल छानते बितानी पड़े—मुझे भूखे-प्यासे रहकर, जर्जर झोपड़ियों की ओट में गुज़ारनी पड़े। भले ही वहाँ इस ललितमहल में बरसने वाले वैभव की एक बूंद भी नसीब न हो मगर इस वैभव को रौंदने वाला, उसे मार-मार कर चकनाचूर कर देने वाला वह अभिशाप तो वहाँ कभी गुंजित नहीं होगा···

ललिता : (चीखती है) प्रियरंजन···

(ललितागौरी लड़खड़ाकर गिरती है, प्रियरंजन उसे सम्भालता है—उसके पहले ही विक्रम, जाई और बलराज जा चुके हैं—उस समय अंधकार के साथ यवनिकापतन)

(प्रथम अंक समाप्त)



दूसरा

दूसरा अंक

पहला प्रवेश

(पिछले अंक में घटित घटनाओं के बाद लगभग चौदह-पन्द्रह साल बीत गये हैं। इस बीते समय में बहुत कुछ हो चुका है। विक्रम इंडस्ट्रीज की स्थापना हो चुकी है जो विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करती हुई अपनी स्वस्थ स्थिति को पहुँची है। इस कारखाने के प्रमुख साझेदार हैं विक्रम, जाई और बलराज। बलराज अभी भी अविवाहित है, लेकिन उसने अपने घर में अपने भतीजे उदय को रखकर, अपने बेटे की तरह उसका पालन-पोषण किया है। उदय बीस की उम्र पार कर चुका है और अब कारखाने में काम कर रहा है। विक्रम और जाई का विवाह तो हुआ ही है; उसके बाद अब उन दोनों की इकलौती बेटी है—रुपाली। जैसा नाम है वैसी ही रुपाली अत्यन्त रूपवती है। वह तेरह-चौदह साल की चपल अल्हड़ किशोरी है। वह विक्रम की बहुत दुलारी है। विक्रम ने अपने द्वारा बनवाए निजी बंगले का नाम भी 'रुपविला' रखा है। इसी दरमियान एक और वाकया हुआ है। जाई के पिता दयाल साहब राजेन्द्रनगर की अपनी नौकरी छोड़ कर, विक्रम के निजी सचिव के रूप में यहाँ काम कर रहे हैं।

जब परदा खुलता है, तब रुपविला के भव्य का दीवानखाना दिखता है। उसकी सजावट राजेन्द्रनगर के ललितमहल के टक्कर की या यह कहिए कि उस सजावट से बेहतरीन, उसे मात देने वाली है। दोपहर के बारह बज चुके हैं। हॉल में इस समय कोई भी नहीं है। कुछ ही क्षणों में बाहर मोटर रुकने की पार्श्व ध्वनि। उस समय नौकर बालाराम जल्दी-जल्दी भीतर से हॉल में आकर डाक जमाकर रखता है। फिर अदब से दरवाजे पर खड़ा हो जाता है। कुछ ही देर में जाई और दयाल बातें करते हुए बाहर से प्रवेश करते हैं। जाई के केशों की कुछ लटायें शुभ्र-सी हो गयी हैं और वह पहले जैसी भोली-भाली, सरल लजीली, ललना नहीं रही है। उम्र के साथ-साथ और हुकूमत की हस्ती बढ़ने से, उसके बोलचाल के तौर-तरीके में उसके रवैये का रौब, उसके आत्मविश्वास की झलक, उसकी हठ और महत्वाकांक्षा आदि की छाप देखते ही पहचान में आ जाती है। दयालजी के सारे बाल सफ़ेद हो चुके हैं, मगर अपने नये मालिक और मालकिन के सामने उनके व्यवहार-बर्ताव में वही विनयशीलता अब भी है, जो पहले थी। भीतर आते-आते जाई कह रही है"")

जाई : (नफरत के साथ) यह खूब है। हर समय हम ही अपनी हार मान लें? हर वक्त यही—'जाने दो उनसे झगड़ा मोल नहीं लेना है,' मरकर हम ही पीछे हट जाएं। हर बार नुकसान हम ही सहन करें और उनके झोले में मुफ्त का मुनाफा ठोक! आखिर क्यों? किसलिए? हम क्या किसी के दबैल हैं?

दयाल . मैं भी तो यही कह रहा हूँ बेटी! यह तो हद है सुनने की! बस बहुत हुआ।

जाई : (अपना पर्स सोफे पर फेंकती हुई) आइ एम फेड अप विद् इट! एब्सोल्यूटली डिस्गस्टेड! बर्दाश्त से बाहर है यह मजबूरी। मुझे तो नफरत होने लगी है इनसे! वायरमन कम्पनी के एक्जिक्यूटिव अधिकारी यहाँ आते हैं तो आपसी कोलेबोरेशन की शर्तें और सारी बातें साफ-साफ तय हो जाती हैं और फिर न जाने कहाँ से भाभी घुमाई जाती है और…

दयाल . और वहाँ से क्या बेटी, राजेन्द्रनगर से फिरती है भाभी।

जाई . तो क्या माँ साहिबा को इसमें खुशी होगी कि हमारा सारा काम चौपट हो जाए और हम बरबाद हो जाएं? अगर ऐसी ही बात है तो…

दयाल जाई, बेटी मुझे ऐसा नहीं लगता। अपने बेटे के लिए ऐसी अमंगल अभिलाषा कौन-सी माँ रख सकती है? मगर यह शख्स 'माँ साहिबा' से पूछता ही कहाँ है? उसके सारे दाँव-पेंच बाहर ही बाहर सीधे खेले जाते हैं। विक्रम जी को उसे एक बार सबक सिखाना ही होगा।

जाई : मैं अभी तक अच्छी तरह इनके मन की थाह नहीं ले पाई हूँ पिताजी! ये कभी कहते हैं, "मुझे उनकी फूटी कौड़ी भी नहीं चाहिए!" तो कभी बोल उठते हैं, "अरे वह सब मेरा ही तो है…आज नहीं तो कल मैं उसे हासिल किये बगैर नहीं रहूँगा।" यदि इन्होंने एक बार मन में ठान ली तो उस मनहूस मुए को सबक सिखाने में कुछ भी देर नहीं लगेगी, यह जरा भी कसर नहीं छोड़ेंगे। (टी पॉट पर रखी हुई डाक को छाँटकर, उन पर टिप्पणी लिख, रखती जाती है।)

दयाल : चौदह साल बीत गये हैं। जिस दिन से 'विक्रम औद्योगिक प्रतिष्ठान' स्थापित हुआ है तब से बस यही चल रहा है। मतलब यह कि ये मुसीबतें खड़ी करते रहते हैं और हम मुसीबतों के पहाड़ों से रास्ता निकालते रहते हैं। अरे, अगर बराबरी ही करनी हो तो वे खुल्लमखुल्ला कर देखें, फिर क्यों नहीं करते? उधर निर्यात में हर साल उनकी लुटिया डूब रही है। यहाँ पिछले छः महीनों से राजेन्द्रनगर में हड़ताल ही चल रही है। और तो और वह कृष्णा नाईक तो हाथ धोकर प्रियरंजनदास के पीछे पड़ा है।

ई : (पत्र पढ़ते हुए) अरे बालाराम, किसी का फोन वगैरह आया था क्या?

बालाराम : नहीं मालकिन ।

दयाल : मैं कहता हूँ जो भी उन मालिकों का हो उस मिल्कियत को भले ही हाथ मत लगाओ मगर बड़े हुजूर की वसीयत के मुताबिक राजेन्द्र उद्योग समूह के जो शेयर्स विक्रम जी को मिलने चाहिए, उसे लेने का उनका हक बनता है ।

जाई : (पढ़ते-पढ़ते सहसा ऊपर देखकर) यह सब आप मुझे क्यों सुना रहे है पिताजी ? उनसे कहिए, उनसे···हमारे श्रीमान्‌जी से ! (फिर पढ़ने लग जाती है ।)

दयाल : मेरे कहने से क्या उनके कानों पर जूँ तक रेंगेगी ? नहीं रेंगेगी, तुम यह जानती हो ।

जाई : और क्या आप समझते हैं वह मेरी भी कुछ सुनने वाले हैं ? विषय छेड़ते ही, भले ही मन में कुछ भी हो, मगर मुझे बुरी तरह फटकार देते हैं । कहते हैं—"तुम्हारे लिए पिछले चौदह सालों में मैंने रेत से तेल निकाल कर तुम्हें तख्तनशीन किया है । अब भूल से भी तख्ते-ताऊस के सपने मत देखना ।" मैं अपने लिए कोई साम्राज्य की भूखी थोड़े ही हूँ । मेरा अपना चूल्हा बगैर उस अधिकार के भी सलामत है ।

दयाल : सच कहूँ तो राजेन्द्रनगर छोड़ने से पहले ही तुमने अगर यह जिद पकड़ ली होती कि पहले बड़े हुजूर की वसीयत दिखाइए तो···

जाई : आप इस अगर-मगर की आज बात कर रहे हैं पिताजी, तब की हालत क्या थी ? उस समय तो आप भी उनकी चाकरी मे थे । खाली चाकरी में ही नहीं थे इनका सर्वनाश करने की साज़िश मे प्रियरंजनदास के साथ आप भी···

दयाल : देखो···मे···ऐसा मत कहो जाई ! तुम जरा मुझे समझने की कोशिश करो । मैं तो मौके की तलाश में था, उनकी कुशलता की परख कर रहा था । जैसे ही मुझे यह अंदाज मिल गया उसी समय मैं फौरन वहाँ की नौकरी को लात मारकर 'विक्रम इंडस्ट्रीज' मे खुद नही आ गया ?

जाई : पिताजी, आपकी यह सफ़ाई बहुत हुई ! आप खुद होकर यहाँ नही आये हैं, मैं आपको लाई हूँ । आपको दुगनी तनख्वाह का लालच दिखलाने पर आप पधारे हैं ! मैंने भी प्रियरंजनदास और आपको दिखा दिया है कि मैं भी दाँव-पेंच खेल सकती हूँ । इसलिए आप मुझे अब वही बातें, आज अपनी सुविधा का सुर लगाकर, मत सुनाइए । (फिर पत्र पढ़ने में लग जाती है ।)

दयाल : (साँस छोड़ते हुए) हूँ ऽ ऽ ! तो फिर बात यह रही । मतलब है विक्रमजी भी एक बार कह रहे थे—प्रियरंजनदास जब तक जिन्दा है, तब तक यह सिरदर्द तो खत्म होने वाला नही है और न ही हमारे लिए कोई छलांग लगाना ही सम्भव है ।

जाई : (शरारत भरी हँसी के साथ) तो फिर प्रियरंजनदासजी का काम तमाम करने की कोई तजवीज है क्या आपके पिटारे में ?

दयाल : मैं क्यों मारूँ उसे ? एक दिन वह खुद अपने कर्मों से खून करने वाला है । राजेन्द्रनगर की हड़ताल ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है । डॉ. कृष्णा नाईक के यूनियन वाले सिरफिरे मजदूरों ने तो उसे खतम कर देने का बीड़ा उठाया है । ऐसा···मैं···नहीं···मेरे सुनने में आयी है यह बात !

जाई : (पढ़ते हुए) बेकार है । उसमें कोई सार नहीं ! ऐसे मक्कार, उत्पात मचाने वाले लोग, कमर की कमान बन जाने तक जिन्दा रहते हैं ।

दयाल : बेटी, मेरी सुनी बात में सार नहीं है, यह मत कहो ! पंडित रुद्रेश्वर ज्योतिषाचार्य क्या-क्या भविष्यवाणी कर रहे थे यह तो तुम···

जाई : आपने उस कोरी बकवास करने वाले बड़बड़-शरीफ श्री रुद्रेश्वर ज्योतिषाचार्य की भली चलाई । वे कह रहे थे कि हमारे ये, चेम्बर आफ़ कॉमर्स के अध्यक्ष बनेंगे ! लेकिन असलियत क्या हुई ? प्रियरंजनदास का वह पिट्ठू, वह गाली बकनेवाला, भारी बहुमत से चुन लिया गया··· (इतने में टेलीफोन की घंटी घनघनाती है ।) इसलिए मैं कहती हूँ कि उस डींग बघारने वाले ज्योतिषी का नाम भी मत लीजिए । ये चेम्बर के अध्यक्ष नहीं बने और न अब भविष्य में बनने की लेशमात्र सम्भावना है । जरा वह फोन उठाइए । अगर इनका फ़ोन हो तो याद दिला दीजिए कि मैं भोजन के लिए घर पर उनकी राह देख रही हूँ ।

दयाल : (रिसीवर उठाकर) हलो ! यस-यस, मैं दयाल ! जी ! विक्रम जी का पर्सनल सेक्रेटरी । हाँ गुड आफ्टर नून मैडम ! विक्रम जी अभी कारखाने से नहीं लौटे हैं ! जी हाँ ! बाई साहब घर पर ही हैं । (रिसीवर पर हाथ रखते हुए) जाई ! रूपाली के स्कूल से फोन है । हेड मिस्ट्रेस बोल रही हैं ।···जी···अभी आयी···

जाई : (चौंककर) रूपाली के स्कूल से ? इस छोकरी ने फिर क्या नया बखेड़ा खड़ा कर दिया आखिर ! (दौड़कर रिसीवर उठाती है ।) हलो ! मैं मिसेज राजेन्द्र—जी—रूपाली । की माँ ! हाँ ! हाँ ! हाँ ! अच्छा । चुटिया काट डाली ? मगर यह कैसे सम्भव है ? जी···जी···कैंची मिली हैं ? कहाँ मिली—अच्छा ! मगर यह रूपाली ने ही किया है यह इलजाम लगाने के लिए सबूत क्या है ! जी ! वही मैं कह रही थी—मैं छानबीन करती हूँ । यह खिड़की से बाहर फेंकी कैंची कितनी बड़ी है ?—जी ! जी···दर्जी की कैंची की तरह !······मतलब यह हुआ कि किसी ने जान-बूझकर······जी !··· देखिए, उस पिछली बेंच पर रूपाली बैठती है······बस···इस पर से ही···

हाँ हाँ, वो पुरानी बातें ठीक हैं। उस समय उसे काफी सज़ा मिल चुकी है··· जी ! हाँ···क्या···काफी विषयों में ? जी ! सब ?···नहीं, मैंने प्रोग्रेस बुक पर दस्तखत नहीं किये हैं···नहीं···नहीं··· तो। उसे आप प्रोग्रेस बुक के साथ—फौरन घर भेजिए···जी !···मैं गाड़ी भिजवा रही हूँ ! जी हाँ ! कल मैं स्वयं आपसे आकर मिलूँगी। जी—थैंक्स, धन्यवाद (भारीपन से फोन रखती है।) बालाराम—जाकर ड्राइवर से कहो कि वह गाड़ी ले जाए और स्कूल से रूपाली को तुरन्त ले आये ! और सुनो···! ऊपरी मंजिल पर मेरे कमरे में सिलाई की मशीन रखी है, उसी की दराज में बड़ी कैंची रखी होगी—सीने पिरोने के सामान के साथ, वह ले आना ! देखना—नयी है बिल्कुल ! (बालाराम जाता है) पिताजी, मुझे इस रूपाली के लच्छन कुछ नेक नजर नहीं आते।

दयाल : क्या गड़बड़ हो गयी ?

जाई : लगता है, औलाद अच्छी निकले इसके लिए माँ-बाप की तकदीर भी अच्छी होनी चाहिए ! कितने भी लाड़ से रखो—उन्हें बड़े प्यार से समझाओ या डाँट-डपट कर उनकी खबर लो—उन पर कुछ असर नहीं होता ! मुझे लगता है यह लड़की किसी दिन मेरे गले में फाँसी डलवाएगी।

दयाल : मगर बेटी इतना चिढ़ने की आखिर बात क्या हुई है ? क्या रूपाली ने किसी से झगड़ा किया है ?

जाई : यह झगड़ा-फसाद तो रोज की ही बात है पिताजी। पिछले महीने उसके द्वारा एक अध्यापिका के बदन पर केवाँच फेंकने से एक बखेड़ा खड़ा हो गया था—अब आज यह दूसरा। कहते हैं गरुड़ साहब की बेटी की वेणी का छोर ही किसी ने पीछे से काट डाला। आपको याद है गरुड़ की बेटी ? अरे वही—रूपाली के तेरहवें जन्मदिन पर, अभी कुछ दिन बीते, पार्टी में आयी थी ! उसके लम्बे बाल बिल्कुल उसके घुटनों तक पहुँच रहे थे, काले काले घने-घने बालों वाली वह···

दयाल : और किसी ने बेचारी के इतने अच्छे बाल ही काट डाले ! छिः छिः क्या शरारत !

जाई : शरारत तो शरारत और कतरनी कहाँ नदारद की, जानते हैं ! खिड़की से बाहर फेंक दी, वह मैदान में पड़ी मिली। वह हेडमिस्ट्रेस कह रही है कि यह सारी शैतानी रूपाली के सिवा और दूसरा कोई कर ही नहीं सकता।

दयाल : मगर इस तरह का इलजाम लगाने के लिए उनके पास सबूत क्या है ?

जाई : सबूत नहीं है इसीलिए वह सम्भलकर बोल रही है···मगर मुझे अपनी इस बेटी का कोई भरोसा नहीं है। (बालाराम आता है) [illegible]

दूसरा अंक

बालाराम : मालकिन यहाँ कंघी नहीं है। मैंने सब तरफ खोज लिया।

जाई : अब तो कोई शक ही नहीं रहा। इस लड़की का ही काम है। उसकी नीयत ही खराब है। आज तो मैं मार-मारकर उसकी चमड़ी उधेड़ दूंगी।

दयाल : देखो बेटी ! पूरी तहकीकात हुए बगैर...

जाई : अब और कौन-सी तहकीकात बाकी है पिताजी। इस छोकरी ने हमारा चार लोगों के बीच इज्जत से रहना मुश्किल कर दिया है। पिछली छमाही परीक्षा में यह सारे विषयों में फेल हुई है, इसलिए इसने घर में प्रोग्रेस बुक भी नहीं दिखाई। अपने आप प्रगति पुस्तक पर इसने खुद मेरे या अपने पिता के जाली दस्तखत बना लिए हैं। यह लड़की स्कूल से गायब रहती है, पैसे चुराती है और चोरी-चोरी सिनेमा देखने जाती है। यह गंदे होटलों में जाकर अगडम-बगडम खाती है। सहेलियों में चुगलियाँ लगाती फिरती है, लड़ती-झगड़ती रहती है इसलिए कोई इसके आसपास भी नहीं फटकता। जब तेरह साल में ही इसके ये कमाल हैं तो इस लड़की का आगे क्या होगा ?

दयाल : छोड़ो बेटी।...इतना गुस्सा नहीं करते। अरे अभी तो रूपाली ना-समझ है।

जाई : आप सब लोग उसे नन्ही, नासमझ समझते हैं इसलिए वह इतनी सिर पर चढ़ गयी है। उसके पिता समझते हैं कि तीनों लोकों में कोई सुन्दर, सुघड़, सुशील, बुद्धिमान और गुणवती बेटी है तो बस हमारी रूपाली...

(इतने में पार्श्व में मोटर रुकने की ध्वनि आती है और "मम्मी" की पुकार। तभी जाई एक कोने में रखी बेंत उठाकर उसे टी-पाय पर रखती है।)

दयाल : (घबराया-सा) जरा अपने गुस्से को सम्भालो बेटी।......

जाई : आज अगर आप में से कोई आड़े आया...तो...तो मैं बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करूँगी।

(इतने में रूपाली "मम्मी—मॉम्म, आज हमारी क्लास में बेहद मजा आया।" और वह खिलखिला कर हँसती हुई भीतर प्रवेश करती है वैसे ही...।)

जाई : (नाराजी से) मारे हँसी के घर सिर पर उठाने लायक मजा कौन सा है वह ? सुनूं तो......

रूपाली : (हँसते हुए) हमारी क्लास में वह शोभा गन्ड है न...! आज उसकी शोभा का शिगूफा खिल गया। कहते हैं, किसी ने उसकी मटकती वेणी पर कतरनी चला दी और उस पगलट को इसका पता ही नहीं चला।

जाई : हूं ! तो किसी शैतान ने उसकी वेणी पर कतरनी चला दी और इसमें तुझे मज़ा आ गया ! अगर कोई कल तेरी चोटी को इसी तरह काट कर छाँट दे तो ?

रूपाली : अरे धत् ! किसकी मजाल है जो कैंची चलाए ! मैं उसके चेहरे पर एसिड झोंक दूंगी ।

जाई : (आश्चर्य से) एसिड ! कहाँ देखा तूने यह सब ?

रूपाली : परसों ही एक फिल्म देखी थी, उसमें देखा है ! वह डाकू हीरोइन को ऐसिड फेंकने की धमकियाँ दे रहा था और······

जाई : देखा पिताजी, देख लिया आपने ?—कहाँ तक पहुँच चुकी है आपकी नातिन रूप ! मुझे सब पता चल चुका है कि सामने की बेंच पर बैठी हुई शोभा की वेणी का छोर किसने काटा है और किस कतरनी से !

रूपाली : (चौंककर) कि···सने···काटा था ?

जाई : घर में कटाई-सिलाई के काम के लिए मैंने परसों ही एक कैंची खरीदी थी, वह आज सुबह से गायब है । मैंने कल रात ही उसे मशीन की दराज में रखा था । वही कैंची तुम्हारी क्लास की खिड़की से बाहर फेंक दी गयी है । किसने फेंकी है···?

रूपाली : (चीखकर) झूठ, सरासर झूठ है । बिल्कुल झूठ !···फिजूल ही··· झूठ-मूठ का इलजाम मत लगाओ मुझ पर—मैं···मैं···मैं कुछ नहीं जानती—मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं ।

जाई : तुम्हारी हेड मिस्ट्रेस का कुछ देर पहले फोन आया था ।

दयाल : मैं सच कहता हूँ बेटी, जब तक यह कैंची तुम्हारे हाथ में न आ जाय, तब तक तुम···

जाई : पिताजी ! आप बीच में मत पड़िए ! बोलो ! पिछली छमाही परीक्षा में तुम्हें कितने मार्क्स मिले हैं ?

रूपाली : मैं सब विषयों में पास हो गयी हूँ ।

जाई : अच्छा ! फिर जरा अपनी प्रोग्रेस बुक दिखाओ तो, कहाँ है ?

रूपाली : मेरी प्रोग्रेस बुक अभी तक मिली नहीं है !

जाई : (गुस्से से) अच्छा ? (उसका बस्ता छीनते हुए) देखूं । देखूं तो सही··· (रूपाली चिल्लाती रहती है ।)

रूपाली : (चिल्लाते हुए छीना-झपटी के साथ) मेरे बस्ते को हाथ मत लगाना कोई !

(बस्ता खुल जाता है । जाई उसे उलटा कर सारी किताबें बाहर फेंक देती है और उनमें से प्रोग्रेस बुक बाहर निकाल लेती है और ज से डाँटती है ।) अब चलो, चुपचाप हट जाओ एक तरफ । झूठी

(खोलकर देखती है) ये'''यहाँ मार्क्स में काटा-काटी किसने की है? तुम्हारी अध्यापिका ने? नहीं न? और ये पिताजी के दस्तखत किसने किये है?

रूपाली : (हिचकिचाते हुए) डै'''डैडी ने'''

जाई : तुम्हे झूठ बोलते हुए शरम नही आती? तुम्हारे डैडी पिछले महीने भारत में थे भी? ये हस्ताक्षर तुमने किये हैं। तुमने अपने पिताजी के जाली दस्तखत बनाए हैं! तुम्हे ये धन्धे सिखाए किसने?

(बेंत लेकर उसे मारने के लिए लपकती है।)

रूपाली नहीं ममी! मुझे मारो मत, ममी! ममी!

जाई : ठहर, आज मैं तुझे ऐसी सजा देती हूँ, जो तुझे जिन्दगी भर याद रहेगी।

(जाई जैसे ही उसे दो चार बेंत मारती है—सप—सप—तब तक "अरे अरे, यह क्या कर रही हो जाई?" इस तरह चीखते हुए विक्रम बाहर से दौड़ा आता है, जाई के हाथ से छड़ी झपट लेता है और उसे दूर फेंक देता है। रूपाली गला फाड़कर रोने लगती है—"डैडी-डैडी मैंने कुछ भी नहीं किया है, सच!" कहते हुए विक्रम से लिपट जाती है। विक्रम उसे पास लेकर पुचकारता है और कहता है, "नहीं नहीं बेटी रूप, तुम्हें कोई कभी नहीं मारेगा अब! चुप हो जाओ बेटी'''अब रोओ मत'''" इस तरह उसे समझाने लगता है। विक्रम के पीछे ही पीछे बलराज और बीस साल का युवक उदय प्रवेश करते हैं। वे दोनों भौंचक्के से यह सब देखते ही रहते है।)

विक्रम : उदय! पहले इस बेंत को उठाकर बंगले से बाहर फेंक दो।

(उदय छड़ी उठाकर बाहर जाने लगता है।)

जाई : रूप मेरी भी बेटी है। उस पर मुझे बिना किसी वजह के बेंत चलाने का पागलपन सवार नही हुआ है। क्या बात हुई है इसे आप समझने की मेहरबानी करेंगे क्या?

विक्रम : (उदय से) तुम जाओ उदय।

(उदय जाता है और छड़ी बाहर फेंककर वापिस लौट कर खड़ा हो जाता है। इसी दरमियान विक्रम बोलता रहता है।)

विक्रम : बात जो भी हुई हो फिर भी बच्चे को जानवर की तरह पीटना मुझे मंज़ूर नही है और खासकर नासमझ भोली-भाली छोटी बेटी को इस तरह पीटना तो माफ किया ही नहीं जा सकता।

जाई : आपकी बेटी छोटी नहीं है—न ही वह नासमझ है और भोली-भाली तो वह बिलकुल ही नहीं है। वह झूठी है, मक्कार है, शरारती है। अगर आपने इसी तरह उसका ऐसा लाड़ प्यार कायम रखा, तो एक

दिन···

विक्रम : यह सब तुम क्या कह रही हो जाई ? झूठी और मक्कार कहलाने लायक उसने ऐसा कौन सा कसूर किया है ? और किसका ?

जाई : उससे ही पूछ देखिए···पूछिए ! अपनी क्लास में सामने की बेंच पर बैठने वाली एक लड़की की वेणी का छोर इस शैतान ने आज काट फेंका है !

रूपाली : (रोते हुए) नही···नही डैडी ! मैंने सच···ऐसा कुछ···नही किया है। ममी मुझ पर झूठ-मूठ का दोष लगा रही हैं······

जाई : मैं झूठ-मूठ का दोष लगा रही हूँ ? आज तुम मेरी कटाई-सिलाई वाली कैंची अपने साथ स्कूल ले गयी थी या नही ?

रूपाली : नही तो ! मै वह बिल्कुल नही ले गयी, मैंने तो कैंची देखी भी नही है।

जाई : झूठ मत बोलो रूप। फिर वह कैंची गायब कहाँ हो गयी ? वह उड़कर तुम्हारी क्लास की बाहर वाली खिड़की के पास कैसे जा गिरी ?

विक्रम : जरा रुको ! क्या किसी ने इसे उस लड़की की वेणी को काटते हुए आँखों से देखा है ? कोई सबूत है ?

जाई : मगर वह कैंची जो······

विक्रम : उस कैंची को क्या तुमने भी अपनी आँखों से देखा है ? अरे एक कैंची जैसी दूसरी कैंची भी हो सकती है। इस पर से ही···

जाई : और वह केवाँच वाला पिछला मामला ?

विक्रम : मैंने उस बारे में पूरी पूछताछ की थी। किसी ने इसे भड़काया-बहकाया था और इसने वह केवाँच की पुड़िया अध्यापिका पर छिड़क दी थी।

रूपाली : (भोली-सी बनकर) डैडी, मैं तो यह जानती भी नही थी कि उस पुड़िया में क्या है।···

जाई : अब देखिए इसकी यह प्रोग्रेस रिपोर्ट। सारे विषयों में यह फेल तो हुई ही है मगर इसने मार्क्स में तबदीली भी की है और आपके जाली दस्तखत कर···

विक्रम : जाई, इसके लिए भी तुम ही जिम्मेदार हो। अगर लड़की को दिन-रात छड़ी की दहशत में रखोगी, तो उसका अन्जाम यही होगा। लड़की धूर्तता करेगी ही।

जाई : ठीक है, तो मैं उसे नही सम्भाल सकती। अब आप ही आगे उसकी देख-भाल कीजिए। कल उसे अपने साथ स्कूल ले जाइए और वहाँ का वह मामला आप ही निपटाइए।

विक्रम : अगर तुम शांत रहो तो मैं सब कुछ निपटा लूँगा। आखिर हमें निपटाना ही पड़ेगा। अरे हमारी बेटी है रूपाली, उससे कोई गलती-कसूर हो भी जाए तो हमें ही तो उसे सम्भालना होगा। नहीं तो क्या हम उसे रास्ते पर फेंक देंगे ?

जाई : यह तो मैं भी समझती हूँ लेकिन······

बलराज : (आगे बढ़कर) छोड़ो उस बात को, ड्राप दैट सब्जेक्ट—इस बारे में बिटिया के सामने बातचीत होनी ही नहीं चाहिए। विक्रम, भई आपने तो मुझे और उदय को आज की खुशी को आनन्द में बिताने के लिए दावत पर पर बुलाया था !

जाई : कैसी खुशी ?

बलराज : यह भी क्या पूछने की बात है ? यह पूछो कि क्या हुआ। विक्रम इंडस्ट्री के लिए आज का दिन महान् है। विक्रम चेम्बर आफ कामर्स के अध्यक्ष बन गये हैं। कुछ देर पहले ही यह खबर तार से आयी है।

जाई : ये···चेम्बर के सभापति···यह कैसे सम्भव हुआ ?

दयाल : और वह सॉली सकलतवाला ?

बलराज : उन्हें पेरेलिसिस का दौरा पड़ गया था इसलिए उन्होंने इस्तीफा दे दिया है। तभी एक्ज़िक्यूटिव ने एकमत से···

जाई : मगर यह हुआ कैसे ? प्रियरंजनदास ने···

विक्रम : ज़मीन-आसमान एक कर दिया। बड़ी उठा-पटक की है···जोश··· आक्रोश···मगर दाल नहीं गली···उन्हीं का अपना भंडा-फोड़ हो गया। बलराज, यह राजेन्द्रनगर की हड़ताल ही उनके गले पड़ी।

बलराज : भई, आप कुछ लोगों को कुछ देर तक धोखा दे सकते हैं मगर सब लोगों की आँखों में क्या हर घड़ी धूल झोंक सकते हैं ? आखिर बाज़ी उलटने ही वाली थी।

विक्रम : अरे, बाज़ी उलटी तो ऐसी उलटी कि पूछो मत। जाई, एक और खुश-खबरी है तुम्हारे लिए। वायमर कम्पनी के प्रेसिडेंट से आज फ़ोन पर बात-चीत की मैंने। सोचा, एक बार और कोशिश की जाए। बस, वहाँ भी प्रियरंजनदास का पूरी तरह पर्दाफाश हो गया। उसे इन भीतरी बातों का बिल्कुल पता ही नहीं था।

बलराज : जब फोन पर बात चल रही थी तभी उन्होंने अपने जनरल मैनेजर को बुलाकर उसकी अच्छी खबर ली।

दयाल : आखिर नतीजा क्या निकला ?

बलराज : उन्होंने अगले पखवाड़े कोलेबोरेशन का करार करने के लिए हमें जर्मनी बुलाया है।

क्रम : यह काम तो आप लोग हुआ ही समझिए।

ाल : मुझे लगता है कि विक्रम जी के ग्रह अब अच्छे हो रहे हैं ! अच्छी ग्रह-दशा है।

ई : फेन्टास्टिक ! विलक्षण ! मतलब यह हुआ, अब आप तीन साल के लिए···

क्रम : तीन नहीं, मैं पाँच साल तक चेम्बर का प्रेसिडेंट रहूँगा।

ई : (हाथ मिलाकर अभिनंदन करते हुए) कांग्रेच्युलेशन्स। बहुत-बहुत बधाईयाँ ! आज मेरा एक सपना साकार हुआ है। मैं बता नहीं सकती कि मुझे आज कितनी खुशी हो रही है। इसी तरह अब आप अगर कुछ दाँव-पेंच और खेलें तो मैं सच कहती हूँ कि राजेन्द्र उद्योग समूह की सारी व्यवस्था भी आप ही के हाथों में···

क्रम : जरा धैर्य से काम लीजिए देवीजी !···यह इतना आसान नहीं है। केवल मैं अपने अधिकार के शेयर माँग भी लूँ तो भी उनको पाने से कुछ काम नहीं बनेगा। बाकी के शेयर होल्डर भी हैं और अभी तो उन पर प्रिय-रंजन दास की पूरी पकड़ है, फिलहाल यही सही।

दयाल : वह भी अब ढीली पड़ने लगी है, विक्रम जी।

विक्रम : इसीलिए हमें समय का इन्तजार करना चाहिए। सम्भव है···(रुकता है।)

जाई : पिताजी ! ज्योतिषाचार्य पंडित रुद्रेश्वर की पहली भविष्यवाणी तो सच ही निकली।

दयाल : तो फिर एक दिन दूसरी भी सच हो जाएगी।

बलराज : उन्होंने दूसरी भविष्यवाणी क्या की थी ?

दयाल : प्रियरंजनदास के ग्रहों में अकाल मृत्यु का योग है; और उसके बाद राजेन्द्र उद्योग समूह···

बलराज : अरे नहीं बाबा, उसमें कोई सार नहीं है। अपने लिए तो जो यह है, इतना ही कारोबार काफ़ी है। हम तो इसी में तृप्त हैं।

जाई : यही तो हमारा आपसी मतभेद है बलराज।

विक्रम : यार तुम ठहरे ब्रह्मचारी, तुम्हें संतोष की साँस लेने में क्या देर लगती है ?

बलराज : और तुम्हारी कौन-सी पाँच-दस संतानों की रेलम-पेल है कि पैसा···

जाई : यह सिर्फ़ पैसों का मसला नहीं है बलराज। भारत के जो इने-गिने उद्योग-पतियों के घराने हैं, उसमें इनका नाम भी शामिल होना चाहिए···

बलराज : बस कीजिए, एकदम रॉकेट पर चढ़कर उड़ान भरने के सपने मत देखिए। अब जो कुछ मिल पाया है, उसकी खुशी में आज हमारा मुँह मीठा

करवा रही हो या बस सूंघे हो...

जाई : ओ माँ ! मैं तो अपनी धुन में भूल ही गयी थी। आपको मुझे फ़ोन पर पहले ही सूचना तो दे देनी चाहिए थी ? अब ज़रा...

रूपाली : ममी, आमरस के डिब्बे खोलूँ ?

विक्रम : (उसे शाबाशी देते हुए) दैट्स लाइक ए गुड गर्ल। इसे कहते हैं होशियार बेटी। (रूपाली भीतर दौड़ जाती है।)

जाई : बस पाँच मिनटों में आपको सूचित करती हूँ। (भीतर जाती है।)

विक्रम : बलराज, देखा ? कैसे रसोईघर की तरफ दौड़ी गयी ! सच ए फाइन गर्ल--कितनी प्यारी बेटी है।...

बलराज : मगर विक्रम, इसकी तरफ ध्यान देना आवश्यक है। खाली दिमाग शैतान का कारखाना बन जाता है दोस्त। इसलिए उसे इस उम्र में खेल-कूद और पढ़ाई-लिखाई में जी जान से लगा देना चाहिए।

विक्रम : हाँ। वह तो...मगर यह करेगा कौन ? हम दोनों तो कारखाने के काम में किस तरह उलझे हुए हैं...

बलराज : यह सही बहाना नहीं है। उदय, तुम्हें यह काम अपने जिम्मे लेना ही होगा। तुम सुबह-शाम फुरसत में रहते हो। सुबह उससे पढ़ाई करवा लिया करो और शाम को...

उदय : जिमखाने में टेबल टेनिस—यही चाहते हैं न आप। बस इन...हो जाएगा।

विक्रम : मगर साहब बहादुर, वहाँ छड़ी का इस्तेमाल मत करना, हाँ !

बलराज : वह क्या छड़ी काम में लाएगा ? उसके लिए तो डाँटकर बोल सकना भी सम्भव नहीं होता। मगर ज़्यादा मिठास भरे व्यवहार से उसे सिर पर मत चढ़ा लेना उदय। (उदय मुस्करा देता है।)

विक्रम : बलराज, अब चेम्बर के सदस्यों को एक शानदार दावत देनी चाहिए। मैं समझता हूँ ताजमहल में...

बलराज : ताज किसलिए ? यहाँ तुम्हारे रूपविला में ही लॉन पार्टी देंगे। किसी भी शाम को हो जाए।

विक्रम : यहाँ नहीं। वैसे यहाँ मुझे कोई एतराज़ नहीं होता मगर मैं नहीं चाहता कि वह यहाँ आये। वही...

बलराज : प्रियरंजनदास ?

विक्रम : हाँ। एक बार माँ आ जाएँ तो मुझे मंजूर है, मगर वह हरगिज़ नहीं आना चाहिए।

बलराज : पर मेरे साथी, अब तुम चेम्बर के सभापति हो।

विक्रम : चेम्बर के सदर की हैसियत से मैंने राजेन्द्रनगर की हड़ताल खत्म

करने की कोशिश में थगुआई करने का फैसला किया है, लेकिन...

दयाल : हड़ताल बंद करना क्या हमारे हाथ में है ? अगर हमने मान्यता प्राप्त यूनियन के लीडरों के साथ समझौते की बातचीत शुरू की तो ज्यादातर मजदूर उसे मानेंगे नहीं। वे तो चाहते हैं कि बातचीत डॉ. कृष्णा नाईक से की जाए और कृष्णा नाईक कैसी तिकड़मी तोप हैं यह तो आप जानते ही हैं।

बलराज : उस भस्मासुर को तो कभी-न-कभी भस्म करना ही होगा, नहीं तो वह किसी दिन हमारे सिर पर ही हाथ रख देगा।

विक्रम : क्यों, राजेन्द्रनगर में तो उसका बड़ा दबदबा है ! उसकी दहशत से...

दयाल : दहशत ! अरे उसने दिन-दहाड़े खून करवाए हैं, बिल्कुल खुल्लम-खुल्ला।

विक्रम : तो फिर इस डॉ. कृष्णा नाईक का मजदूरों पर जो प्रभाव है, उसे कम करना ही चाहिए मगर अभी वह समय नहीं आया है। पहले यह हड़ताल समाप्त करवानी होगी। भले ही उसके लिए हमें कृष्णा नाईक से बातचीत करनी पड़े।

दयाल : मगर यह कैसे मुमकिन है ? जब तक प्रियरंजनदास मैनेजिंग डायरेक्टर है तब तक तो वह इंच-दो-इंच भी पीछे नहीं हटेंगे।

विक्रम : वह देखेंगे। (कुछ सोचकर) दयालजी ! आपके वे ज्योतिषाचार्य पंडित रुद्रेश्वर की भविष्यवाणी इस तरह अचानक सच हो जाएगी इसकी तो कल्पना ही नहीं थी। है न !

दयाल : तुम कुछ भी कहो—मानो न मानो, उसे कोई सिद्धि अवश्य प्राप्त है। उसने जो भविष्यवाणी की वह सच ही साबित हुई है।

विक्रम : क्या अभी भी उनका मुकाम यहीं है ?

दयाल : जी हाँ, फिलहाल तो मुकाम यहीं है।

विक्रम : तो फिर उन्हें कोई विशेष उपहार तो अवश्य देना चाहिए।

दयाल : क्या मैं उन्हें बंगले पर ले आऊँ ?

विक्रम : बंगले पर नहीं, ऑफिस में। मेरे केबिन में ले आइए। मुझे उनसे और भी कुछ पूछना है।

बलराज : अब और क्या पूछना चाहते हो ? क्या इस बारे में पूछना है कि प्रियरंजनदास कब और कैसे मर रहे हैं ?

विक्रम : (नकारते हुए) च्-च्-च्-च् नहीं भाई ! मेरा उससे क्या वास्ता। मैं तो कह रहा था...कुछ जनरल...आम बातें ? जैसे—अब अपनी इस रूप के बारे में।

बलराज : (उसकी तरफ आँखें गड़ाकर) मेरे दोस्त, एक बात कभी मत

भूलना—वाइज मेन रूल देयर स्टार्स, फूल्स ओबे देम—समझदार अपने सितारों पर हुकूमत चलाते हैं और मूरख उनका हुक्म मानते हैं।

विक्रम : मैं जो कह रहा हूँ उसे ठीक से समझ तो लो बलराज ! मुझे एक गुमनाम खत आया है। कोई राजेन्द्रनगर का मजदूर है। हो सकता है वह कृष्णा नाईक का आदमी हो। मुझे डर है कि···प्रियरंजनदास की जान खतरे में है।

बलराज : उस पत्र में लिखा क्या है ?

विक्रम : (जरा सोच-विचार में) वैसे···मतलब···ऽऽ "अगर प्रियरंजन दास की हत्या कर दी गयी और राजेन्द्र उद्योग समूह आपके अधिकार में आ गया तो डॉ. कृष्णा नाईक से वार्तालाप करने के बारे में आपकी क्या नीति रहेगी ?"—यह पूछा है उसने। और लिखता है··· (रुकता है)

बलराज : और क्या ?

विक्रम : और···और···कुछ नहीं···

बलराज : यह पत्र तुम सीधे पुलिस को भिजवा दो।

दयाल : मगर उससे हमें क्या करना है ? वे अपने आप देख लेंगे। क्या उन्होंने हमारे लिए कभी अपनी ओर से कोई भलमनसाहत दिखाई है ?

विक्रम : आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। इसके अलावा मुझे फिलहाल डॉ. कृष्णा नाईक से बुराई मोल नहीं लेनी है।

बलराज : तो फिर तुमने क्या करने का फैसला किया है ?

विक्रम : मौनं सर्वार्थ साधनम्—बस। समझ लो ! (रुककर विचार करने लगता है।)

बलराज : फिर अब किस गहन विचार में पड़ गये ?

विक्रम : विचार···यह···है···कि···समझो···कुछ ऐसा हो ही जाता है तो फिर उसका परिणाम क्या होगा—(होश में आकर बड़बड़ाते हुए) मैं यह सोचकर नहीं चल रहा हूँ कि ऐसा कुछ होगा ही। मैं यह नहीं चाहता कि ऐसा हो भी···लेकिन समझो ऽऽ···

बलराज : *मौन स्वीकृति लक्षणम्*—फिर समझने को क्या रखा है ? राजेन्द्र उद्योग समूह तुम्हारे अधिकार में आ जाएगा, फिर तुम्हारी कर्तबगिरी के लिए बस आसमान की ही एक सीमा रहेगी, यह सब बताने के लिए किसी ज्योतिषी को बुलाने की क्या जरूरत है ? फिर भी मेरे दोस्त, मेरी एक सलाह मानो; भविष्य के गर्भ में क्या है, उसे जानने के लिए गलत दिशा मत अपनाओ। अपने मन में भी यह ख्याल···मत···

विक्रम : तुम कहना क्या चाहते हो ? कुछ तो बताओ।

बलराज : विक्रम, मेरी बायीं आँख फड़क रही है। कहीं तुम्हारी मनोकामना···

(इतने में भीतर से रूपा दौड़ी आती है और...)

रूपाली : चलिए डैडी। चाचाजी, नानाजी—उदय, चलिए न ? भीतर मैंने *सारा खाने का सामान सजाकर रखा है—जरा देखिए तो।*

बलराज : आओ चलो देखें...चलो उदय...(कहते हुए वह भीतर जाता है, साथ में उदय भी। दयाल भीतर जाते-जाते रुक जाता है।)

दयाल : वह खत, जरा देखने को मिल सकता है ?

विक्रम : (चौंककर) खत ! अच्छा ! वह खत ! (चारों तरफ़ का आभास लेते हुए) आपको बताने में कोई हर्ज नहीं है। चिट्ठी वगैरह कोई नहीं आयी। वह मजदूर मुझसे मिलने खुद ही आया था।

दयाल : मुझे यही लगा, क्योंकि मैंने ही उसे आपके पास भेजा था।

विक्रम : वह बेशर्म मुझसे नगद रकम माँग रहा था। मैंने उससे कह दिया कि मैं इस झमेले में पड़ना नहीं चाहता—पहले तू निकल जा यहाँ से।

दयाल : वैसे वह कोई झमेला वगैरह नहीं है विक्रमजी। फिर भी आपने जो किया वह ठीक ही किया। लेकिन...

विक्रम : मुझसे—यह सब झमेला होगा नहीं। मुझे यह सब पसन्द भी नहीं है। मैं मानता हूँ कि वह दुष्ट इसी काबिल है कि कोई उसे मार डाले...मगर मुझे...उस उलझन में किसी भी तरह पड़ना नहीं है। इसलिए इस बात को जगजाहिर मत होने दीजिए। लेकिन ज्योतिषाचार्य पं० रुद्रेश्वरजी को मेरे पास जरूर ले आइए—केबिन में।

दयाल : आप इस बारे में बेफिक्र रहिए। (जाता है।)

विक्रम : (रुककर स्वगत)

भविष्य की बाँबी पर खड़ा हूँ मैं किसलिए ?
किस फन की मणि का मोह हो गया है मुझे ?
क्यों गूँज रही है मेरे कानों में बस एक ही भविष्यवाणी ?
नहीं मानता मैं ऐसा कुछ हो जाएगा
नहीं चाहता मैं घटित हो जाए ऐसी घटना
मगर...हो...जाए...अगर...तो...

(भीतर से रूपाली "डैडी...डैडी"—पुकारते हुए जल्दी-जल्दी दौड़ी आती है।)

रूपाली : डैडी ! क्या हो गया है आपको ? सब लोग भोजन के लिए आपका इन्तजार कर रहे हैं, और आप अभी तक यहीं हैं। चलिए न, जल्दी चलिए...

(वह विक्रम का हाथ पकड़कर भीतर ले जाती है।)

—अंधकार—

दूसरा अंक

दूसरा प्रवेश

(लगभग छः मास बीत चुके हैं। रूपविला का वही दीवानखाना। सुबह दस बजे का समय है। बहुत-सी फाइलें एक तिपाई पर रखी हुई हैं और जाई पास के आसन पर बैठी हुई, एक-एक फाइल उलटकर देख रही है। उन पर वह कुछ टिप्पणी भी लिखती जा रही है। ऊपर से वह शांत और गम्भीर नजर आती है, मगर भीतर ही भीतर वह बहुत परेशान और अनमनी है। दयालजी फोन पर बातें कर रहे हैं। बीच ही में फोन के रिसीवर पर हाथ रखकर वह जाई की ओर मुड़कर पूछते हैं—)

दयाल : प्रेस के प्रतिनिधि आ रहे हैं। उन्हें यहीं आने के लिए कहूँ?

जाई : अगर इन्हें उस मुलाकात में भाग लेना है तो प्रेस कान्फ्रेंस यहीं रखनी पड़ेगी।

दयाल : (फोन पर) हाँ! कान्फ्रेंस यहीं! हाँ, रूपविला में ही होगी, समझे··· आफिस में नहीं और देखिए, प्रेस वालों को एक सूचना दे दीजिए—जरा गोपनीय ढंग से—समझे। ···हाँ। साहब की तबियत अभी इतनी ठीक नहीं है जितनी होनी चाहिए! —हाँ—हाँ—प्रियरजनदास के मरने का सदमा—उतना नहीं, मगर उस खूनी हमले में उन्हें अपनी माँ के मर जाने का जबर्दस्त धक्का पहुँचा है। हाँ—हाँ—भले ही उस घटना को चार-छह महीने हो गये हों—लेकिन साहब उस टेंशन से अभी भी निकल नहीं पा रहे हैं—नहीं—नहीं! उन्होंने घर पर ही बैठे-बैठे कामकाज देखना शुरू कर दिया है। और वह कर क्या सकते हैं। राजेन्द्रनगर की जिम्मेदारी भी सम्भालनी पड़ती है—इसलिए उनके कई काम अधूरे रह जाते हैं—लोग कम हैं। जी यह हालत है—राजेन्द्रनगर से बलराज बस आने ही वाले हैं—हाँ, हर दूसरे-तीसरे दिन उन्हें वहाँ जाना पड़ता है—नहीं तो फिर मैं जाता हूँ—या फिर श्रीमती विक्रम जाती हैं! हाँ—हाँ—तो असल बात यह है कि मुलाकात के समय आप कोई उनसे—हाँ—साहब से, उस खूनी हमले के बारे में कुछ ऐसा मत पूछिएगा। हाँ—वही! फिजूल ही इरीटेट करने वाले सवाल मत पूछिए बस! हाँ—हाँ—वे परेशान न हो जाएँ बस! हाँ-हाँ—पूछिए। नयी योजनाओं के बारे में पूछिए, कैसे यह राजेन्द्रनगर की हड़ताल समाप्त हुई—यह पूछिए?—हाँ—हाँ—प्रशा-

सन चलाने में तो वह माहिर हैं, बिल्कुल। —अपने पिता से उन्होंने यही तो विरासत में पाया है। अजी, इतना भारी धक्का पहुँचा है उन्हें, उनकी जगह कोई और होता, तो उसके छक्के छूट गये होते—मगर यह हिम्मत नही हारे; बराबर रोज का अपना काम और काम का सही इंतजाम, इस पर इनका पूरा ध्यान है। इसे कभी पकड़ से बाहर नही होने दिया इन्होंने। —हाँ-हाँ—आप कभी भी आइए। हम आपका इन्तज़ार ही कर रहे हैं। ओ—के—ओ—के (रिसीवर रख देते है।)

जाई : आपने तो उनसे कह दिया कि 'कभी भी आ जाइए!' मगर बलराज को तो लौट आने देते! उनके सिवा प्रेस के लोगों का सामना और कौन करेगा? देखिए, मुझसे तो यह नही सधेगा पिताजी, और इनके बारे में जोखिम उठाने के लिए मैं बिल्कुल तैयार नहीं हूँ।

दयाल : अरे बेटी! प्रेस के लोग आयेंगे तो उन्हें यहाँ वेटिंगरूम मे बिठा रखेंगे —यहाँ उनका चाय-नाश्ता निपटा देंगे। अपना सारा काम सही हो जाए, तब फिर उन्हें बुलवा लेंगे।

जाई : (काम करते हुए) भगवान् जाने, आज की यह प्रेस कान्फ्रेंस बिना किसी बाधा के, किस तरह पूरी होती है!

दयाल : कमाल है! ऐसा कौन-सा डर तुम्हारे दिल मे घर कर गया है जाई? अरे इस प्रेस कान्फ्रेंस का मतलब कोई पुलिस की तहकीकात नही है।

जाई : एक बार पुलिस की तहकीकात चल सकती है···क्योंकि उन्होंने जो भी पूछना होता है, वे सीधी तरह पूछ लेते है···पता नही चलता। मगर ये प्रेस के लोग पूरे घाघ होते है, घाघ! बस सनसनीखेज खबर बनाने के लिए वे खोच-खोच कर, कहाँ-कहाँ से, मसाला खोज निकालेंगे···

दयाल : यह सब तुम मुझ पर और बलराज के भरोसे छोड़ दो। बस तुम सिर्फ़ साहब को सम्भालो। अगर उन्होंने अपनी जबान पर काबू रखा···तो··· मैं कहता हूँ कि अगर वह खामोश ही बैठे रहे—तो···

जाई : यही तो बहुत मुश्किल है, पिताजी। पुलिस तहकीकात के समय उन्होंने, कैसे हमारे होश गुम कर दिये थे—याद है न आपको?

दयाल : होश! अरे मैं तो पसीना-पसीना हो गया था। बात थी बिल्कुल सीधी सादी; एक शाम राजेन्द्रनगर का एक मजदूर दबे पांव ललितमहल में घुसता है और प्रियरंजनदास पर वार कर उनका खून करने लगता है, तभी ललितागौरीजी उनके बचाव के लिए बीच में आ जाती है, इसलिए वह उनका भी खात्मा कर देता है। उनकी चीखें सुनकर बंदूकधारी गोरखा संतरी दौड़ा आता है और गोलियों की बौछार कर भागते हुए खूनी को मार डालता है। सारी बात यहाँ अपने-आप खत्म होती है। मगर पुलिस···

का यूनियन लीडर डा. कृष्णा नाईक पर शक होना ठीक ही है। पुलिस अधिकारी उस मजदूर के, डा. कृष्णा नाईक से सम्बन्ध होने की छानबीन कर रहे थे। इसलिए वे जाँच पड़ताल के लिए यहाँ पहुँचे थे। उस समय इन्हें कानों में तेल डालकर सब सुन लेना चाहिए था—बस छुट्टी होती—मगर नहीं; साहब बोल गये वह मजदूर कैसे उनसे मिलने आया था, कैसे मैंने उसे उनके पास भेजा था, वगैरह-वगैरह। यह सब उगलकर उन्हें अपने पर ही कीचड़ उछाल लेने की जरूरत ही क्या थी? चलो, जो हुआ वह भी ठीक हो गया। पुलिसवालों को यकीन हो गया कि इनका दिमाग ठीक नहीं है; इसीलिए वे अंट-संट बके जा रहे थे। गनीमत है—तभी मेरा छुटकारा हुआ।

जाई: आपका तो छुटकारा हो गया, मगर मैं इस बंगले में आजीवन कारावास में पड़ गयी हूँ। इस घटना को हुए छः महीने बीत चुके हैं, मगर इन्हें कितना भी समझाओ, उसे यह भूलने को तैयार ही नहीं है। मैं बिल्कुल सही कह रही हूँ, पिछले छह महीनों से एक रात भी इन्हें चैन की नींद नहीं आयी। जब इन्हें शांति नहीं, तो मुझे कैसे नसीब हो? मरने वाले तो चल बसे और मेरा सुख-चैन हराम कर गये। यह जिन्दा मौत है मेरे लिए। बस सवाल-ही-सवाल, जब देखो तब सवाल। अनवरत वेदना, लगातार बेचैनी और तिलमिलाहट भरे तीखे प्रश्न···।

दयाल: मगर विक्रम जी ऐसे कौन-से सवाल पूछते हैं?

जाई: वह मजदूर विशेष रूप से ठीक मेरे ही पास कैसे पहुँचा? उसका तुम्हारे पिताजी के साथ क्या वास्ता था? वह तुमसे मिला था या नहीं? तुमसे उसकी क्या बातचीत हुई? तुमने उसे कितना दिया—वह एक नहीं अनेक ऐसे प्रश्न पूछते रहते है। और बार-बार उन्हीं सवालों को सुनते-सुनते मेरे तो कान बहरे हो गये है।

दयाल: मैं समझता हूँ, अगर उनकी माँ साहिबा का खून न हुआ होता तो···

जाई: उस बारे में आप मुझसे कुछ न कहिए पिताजी। लोगों के सामने यह सारा शोक-प्रदर्शन उचित हो सकता है; मगर माँ की मौत को ये इतना अपने दिल से क्यों लगा बैठे हैं? ऐसी कौन-सी बड़ी ममता, माया, वात्सल्य दिया था उन्होंने, जो फूटकर बह रहा है? जब वह जीवित थी, यही उस घर से यह कहकर बाहर निकले थे, "मैं इस जीवन में कभी आपकी सूरत तक नहीं देखूँगा।" ये शब्द—ये उद्‌गार और किसके थे? इनके ही थे न?

दयाल: अब छोड़ो वे बातें। मगर तुमने कहीं यह तो उन्हें नहीं बता दिया कि वह तुमसे मिला था?

जाई : आप मुझे इतनी नादान समझते हैं पिताजी ?

दयाल : वैसी बात नहीं है बेटी। पति-पत्नी आपस में बातें करते हुए, कभी-कभी सहज ही खास बात भी बोल जाते हैं।

जाई : सच पिताजी, मैंने इन्हें बता भी दिया होता। इसमें न बताने लायक बात थी ही क्या ? जैसे वह इनसे मिला था वैसे ही वह मुझसे भी मिला। मैं इनसे सब कुछ कह देने वाली थी। मगर जैसे ही माँ साहिबा की हत्या का समाचार इन्हें मिला इनका रुख ही बदल गया। बस वहीं मैं सतर्क हो गयी। मैंने सोचा, करने जाओ भला और सिर पर टूटे बला।

दयाल : ज़रा धीरे बोलो जाई···

जाई : अब आप ही सच-सच बताइए पिताजी, माँ साहिबा के खून की बात छोड़ दीजिए, मगर क्या प्रियरंजनदास का दुनिया से उठ जाना इन्हें पसंद नहीं था ? अब यह जो हुकूमत मिली है उसका हाकिम कौन है ? मैं तो नहीं न ?

दयाल : अब विक्रमजी को इस बारे में सोचना ही बंद कर देना चाहिए।

जाई : मैं भी तो इन्हें बार-बार यही कहती रहती हूँ। मगर इनका मन इन्हें क्यों खाये जा रहा है, मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता। (एकदम चौंक कर दरवाज़े की तरफ़ देखती है।) रूप ऽ ऽ, मैं जानती हूँ तुम आड़ में खड़ी होकर सब सुन रही थी। (भागते हुए पैरों की आवाज़) यह लड़की बहुत बिगड़ती जा रही है पिताजी। बैड टू वर्स्ट। वह उदय इतनी लगन से सिखाता है इसे मगर पढ़ने में इसका मन ही नहीं लगता।

दयाल : अभी अल्हड़ है तुम्हारी बेटी, छोटी है।

जाई : यह दिखने में छोटी है पिताजी, मगर है बड़ी खोटी। उसकी दुष्ट बुद्धि समय से पहले ही प्रौढ़ होती जा रही है। मुझे इसी बात का डर है।

(बलराज की सीटियाँ पास आती सुनाई देती हैं।)

बलराज : (प्रवेश करते हुए खुशी से घड़ी देखकर) देखो जाई। ठीक समय पर लौट आया या नहीं ? हमारे वह जीनियस, जिगरी दोस्त, कहाँ हैं ?

जाई : वह बड़ी देर से स्नानागार में गये हैं। फुहारे के नीचे बैठे होंगे। यह आजकल दिन में दो-तीन बार, घण्टा-घण्टा भर, बाथरूम में शावर के नीचे बैठे रहते हैं।

बलराज : ठीक है, यह तो हमें समझना ही चाहिए कि उन्हें अपनी माँ की मौत का भीषण आघात पहुँचा है।

जाई : जैसे इस दुनिया में और किसी की माँ मरती ही नहीं !

बलराज : जाई ! विक्रम के लिए उनकी 'माँ साहिबा' एक अपनी ही दुनिया थी।

जाई : इसीलिए इतने बरसों से उनके नाम से भी उन्हें चिढ़ थी।

बलराज : उनका यह तड़पना भी उनके स्नेह का दूसरा पहलू था। अपनी माँ के खून के लिए कहीं न कहीं वह खुद भी ज़िम्मेदार है, उनके मन का यह काँटा उनका दिल छलनी कर रहा है।

जाई : मगर क्या उसमें सचाई का लेशमात्र भी अंश है? फिर अपने मन में खुद ही भूत पैदा कर, उसकी बाधा मोल क्यों ली जाए? यह तो बस अपने-आपको परेशान करना हुआ और दूसरे को भी।

बलराज : अपराध बाधा के इस भूत से हमें ही उसे छुड़ाना होगा। लेकिन उससे नाराज़ होकर, चिढ़कर या उसकी टीका-टिप्पणी करने से वह रास्ते पर नहीं आएगा। खैर, छोड़ो इसे। दयालजी कान्फ्रेंस के लिए प्रेस के लोग...?

दयाल : बस आने ही वाले हैं। मैं अतिथि-गृह में उनका स्वागत करता हूँ और सब इंतज़ाम ठीक हो जाने पर इंटरकाम पर आपको वैसी इत्तला देता हूँ। जब आप कहेंगे, तब उन्हें ले आऊँगा। (जाते हैं।)

जाई : राजेन्द्रनगर के मज़दूरों के क्या समाचार हैं?

बलराज : बताता हूँ (आवाज़ लगाता है।) बालाराम! (बालाराम का प्रवेश) साहब से कहो कि मैं उन्हें फौरन याद कर रहा हूँ। (वह जाने लगता है।) ठहरो—वह ऐसे जल्दी नहीं आयेंगे। उनसे कहना राजेन्द्रनगर में गम्भीर समस्या पैदा हो गयी है अतः आपको जल्दी बुलाया है।

जाई : (चकित होकर) ऐसी कौन-सी गम्भीर समस्या...

बलराज : ज़रा रुको तो जाई। बालाराम—उन्हें मेरा सन्देशा जा सुनाओ, बाथरूम का दरवाज़ा खटखटाकर, समझे।

(बालाराम जाता है।)

जाई : (फ़ाइलों को एक तरफ पटकते हुए) बलराज, अब यह काम मेरे बूते से बाहर होता जा रहा है।

बलराज : *(सीटी बजाते हुए, शरारत से) जो भक्त माँगता है—भगवान् देता* है, फिर भक्त क्यों रोता है?

जाई : समझ गयी। अब पहले यह बताओ, वहाँ हुआ क्या है?

बलराज : मैंने आते ही पूछा था, वह कहाँ है मेरा जीनियस दोस्त। मैंने व्यर्थ ही उसे 'प्रतिभा सम्पन्न' जीनियस नहीं कहा था। यहाँ बैठे-बैठे उसने राजेन्द्रनगर के कारखाने के बारे में, उसकी नीति के सम्बन्ध में, इस मानसिक स्थिति में भी जो निर्णय लिये हैं, वे एक सौ एक टके अचूक निकले हैं। कई जगह तो मेरा अनुमान गलत निकला है मगर उसका सही।

जाई : यह बीमार हैं, इनके मन की हालत ठीक नहीं है, फिर भी जब यह एक बार काम पर जुट जाते हैं, तो फिर शेर बन जाते हैं। फिर तो इनके साथ

काम करने वालों को भी इनकी छलाँगों के साथ ही दौड़ना पड़ता है।

बलराज : ठीक यही मैं कह रहा हूँ। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि तुम दोनो को राजेन्द्रनगर जाकर फिर से ललितमहल में रहना चाहिए और···

जाई : हम दोनो···राजेन्द्रनगर जाकर रह···और वह भी ललितमहल मे? ना भई ना···

बलराज : क्यों, इसमें इतना अद्भुत और असम्भव क्यों लग रहा है? मैं यहाँ रहकर विक्रम इंडस्ट्रीज का कामकाज देखूँगा और तुम दोनो मिलकर···

जाई : यह इन्हें तुम ही सुझाकर देखो। यह तैयार हो भी जाएँ तो भी इस मानसिक दशा मे इनका राजेन्द्रनगर में रहना ठीक होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। मैं तो अकेली उनके साथ बिल्कुल ही नही रहूँगी।

बलराज : क्योंकि, उस ललितमहल में प्रियरंजनदास और ललितागौरीजी का खून हुआ था? अरे! छोडो, इतनी भी डरपोक मत बनो। उस घटना को छह महीने बीत गये है। अब तुम्हे उसे भूल जाना चाहिए।

जाई : यह अपने मित्र को ही सुझाइए।

(इतने में घरेलू पोशाक पहने विक्रम धीरे-धीरे कदम बढाते हुए प्रवेश करता है। उसका चेहरा सर्द और नजर भटकी-भटकी-सी है।)

विक्रम : बलराज, राजेन्द्रनगर में क्या घपला हो गया है?

बलराज : घपला कैसे होता! तुम्हारे सारे निर्णय, फैसले अचूक निकले हैं। तुम्हें स्नानघर से जल्दी बाहर निकलवाना था इसलिए ही मैंने तुम्हें ऐसी खबर भिजवाई थी।

विक्रम : फिर कभी मुझे ऐसी गलत खबरें न भेजना। मेरी साँस एकदम धकधक करने लगी थी। राजेन्द्रनगर की जिम्मेदारी सिर पर पहाड़ की तरह सवार है इसलिए मैं···

बलराज : यार, तुम्हारा भी बम कमाल है। ऐसा हुआ क्या है जो बात-बात में तुम्हारा दिल दहल जाता है। अब तो सब तुम्हारे मन के अनुसार हो गया है। अब तो तुम्हें छाती ठोककर···

विक्रम : मन के अनुसार? किसके? मेरे? नही बलराज, तुम्हें गलतफहमी हुई है। इसका तो मतलब यह हुआ कि इन दोनो की हत्या हो जाए यह मेरी इच्छा···

जाई : देखा बलराज। यह बात को कैसे मरोडकर बोलते हैं! उन दोनों की हत्या का इससे क्या सम्बन्ध? क्या आप नहीं चाहते थे कि राजेन्द्र उद्योग समूह का संचालन आपके हाथ में आये?

विक्रम : हाँ, चाहता तो था! थोड़ा बहुत···माने···

बलराज : मैं भी बस यही कह रहा था। सुनो विक्रम, हमें अपनी सारी थकान

झटककर कमर कसनी होगी और नये काम में जुटना होगा। इसके लिये आप दोनों को अपना निवास ललितमहल में रखना चाहिए। मैं यहाँ रहकर...

विक्रम : (चीखकर) ललितमहल में! हरगिज़ नहीं!—बिल्कुल नहीं!! मुझे जब भी अवसर मिलेगा, मैं इस ललितमहल को नेस्तनाबूद कर दूँगा।

जाई : आप ऐसा क्यों कहते हैं, इतनी सुन्दर इमारत...

विक्रम : (चिल्लाकर) बेवकूफों जैसी बातें मत बको! वह इमारत अब सुन्दर भी नहीं रही। वहाँ का सारा सौन्दर्य भी अब विषैलेपन की सीमा पार कर गया है। अगर कोई वहाँ कुछ देर भी रह जाए, तो वहाँ का तेज़ ज़हर उसकी नस-नस में भिदे बगैर नहीं रहेगा। ललितमहल की हवा में ही बेएतबारी की बू समायी हुई है। उसकी बैठकों, बिस्तरों में व्यभिचार अपनी मस्ती में सलसला रहा है। वहाँ हर कदम पर, ज़र्रे-ज़र्रे में एक ही आग भड़क रही है—दूसरे की मिल्कियत को हड़प जाने की हवस!—भले ही उसके लिए खून ही क्यों न करना पड़े; अगर अपने में हिम्मत नहीं तो राह पर भटकते हुए किसी हिम्मतवर बहादुर को न्यौता देकर—उसे कुछ ईनाम देकर काम को निपटाओ। आज ईनाम के लालच में कोई भी खुशी के साथ किसी का खून बहा सकता है और बात ही बात में काम को अंजाम भी दे सकता है।

जाई : (घबराकर चिल्लाते हुए) विक्रम...

विक्रम : न किसी को अपने नाम पर शक आयेगा...

जाई : यह सब तुम क्या कहे जा रहे हो विक्रम?

विक्रम : मैं तो सिर्फ़ तुम्हें इस बात का यकीन दिलाना चाहता हूँ कि ललितमहल अब रहने लायक जगह नहीं रही। उसे तो मिट्टी में ही मिला देना चाहिए।

बलराज : ठीक है, इस पर फिर हम फ़ुरसत से सोचेंगे, लेकिन अभी तो आप दोनों को राजेन्द्रनगर के गेस्ट हाउस में रहने में कोई आपत्ति तो नहीं है?

विक्रम : कैसे नहीं होगी? नहीं! मैं राजेन्द्रनगर में कदम भी नहीं रखूँगा।

जाई : मगर यह कब तक चलेगा? वहाँ का कामकाज देखेगा कौन?

विक्रम : क्यों? तुम दोनों तो हो! रोज़ सुबह वहाँ साथ निकल जाया करो और दिन का कामकाज निपटाकर शाम को वापिस आ जाया करो। अगर ज़रूरत पड़े तो शाम को भी वहीं रुक सकते हो। सवाल हिम्मत का है, फिर वह ललितमहल के घोस्ट हाउस में हो, या कारखाने के गेस्ट हाउस में! (हँस देता है।)

बलराज : यह बात मज़ाक में लेने लायक नहीं है। अगर तुमने तय ही कर

लिया है कि वहाँ नहीं जाओगे तो फिर हमारे लिए यही एक रास्ता है, मगर उससे काम नहीं चलेगा। हमें कदम-कदम पर तुम्हारी सलाह लेने की ज़रूरत पड़ेगी। लोग यहाँ तुमसे लगातार मिलना चाहेंगे, उनसे मुलाकातें करनी होंगी। उस समय तुम्हारे फैसले हम कैसे ले सकेंगे ?

विक्रम : फिर यह टेलीफ़ोन किसलिए है ?

जाई : क्या टेलीफ़ोन पर सारी बातें की जा सकती हैं ?

विक्रम : इस बारे में फिर सोचेंगे। सब मुमकिन है…

जाई : अगर मैं राजेन्द्रनगर के कामों में यहाँ उलझ जाऊँगी, तो यहाँ रूप की तरफ ध्यान कौन देगा ?

विक्रम : इस बारे में मैंने पहले ही सोच रखा है। अब आगे रूपाली की सारी ज़िम्मेदारी मैंने खुद ही उठाने का फैसला किया है। तुम बिल्कुल नहीं जानती कि बच्चों का लालन-पालन कैसे किया जाता है। मुझे अब इसका यक़ीन हो गया है।

जाई : तो क्या आप आँखें बंद कर, यह जो कहती है, उस पर विश्वास करने लगे हैं ?

विक्रम : मैं कान का कच्चा नहीं हूँ।

जाई : कौन जाने ? फिर भी रूपाली ……

बलराज : बस ! समझता हूँ, इस समय इस बात पर बहस करना ठीक नहीं है। (इतने में इंटर कॉम की घंटी बज उठती है। बलराज उसका स्विच दबाते हैं) कहिए दयाल जी ?

दयाल : प्रेस के सब लोग आ गये हैं।

बलराज : तो फिर कुछ देर बाद उन सबको इधर ही ले आइए। (स्विच ऑफ करके) ठीक है न ? उन्हें यहीं आने दिया जाए।

विक्रम : हाँ-हाँ इधर ही आने दो। जिसने कुछ किया न हो उसे किस बात का डर ? उन्हें चाहे जो पूछने दो। माद् कानून इज विनर…मेरा दिल साफ़ है।…

जाई : गलत-सलत मत सोचिए। ये लोग आपसे किसी बात का जवाब पूछने नहीं आ रहे हैं।

बलराज : विक्रम, पुरानी सारी बातें समाप्त हो चुकी हैं। अब प्रेस के जो लोग आ रहे हैं वे केवल इतना जानने के लिए कि तुमने राजेन्द्र उद्योग समूह की हड़ताल को किस तरह बंद करवाया और विक्रम इंडस्ट्रीज और राजेन्द्र इंडस्ट्रीज का एकीकरण, हमारे नये संकल्प और नयी योजनाएँ—इनके बारे में। अगर तुम उनके सवालों के सीधे जवाब दे दोगे तो भी काफ़ी है।

जाई : मैं तो कहूँगी कि जहाँ तक बने आप चुप ही रहिए। मैं और बलराज

उनके सारे सवालों का जवाब दे देंगे। चाहे तो किसी विशेष प्रश्न पर'''

विक्रम : (व्यंग से) मैं जानता हूँ कि इन कुछ दिनों में तुम और बलराज बहुत ही बुद्धिमान, कार्यकुशल, और नीतिनिपुण हो गये हो। लेकिन मैं बिल्कुल मंदबुद्धि, मूर्ख और सनकी हो गया हूँ, यह मानने को'''

बलराज : यह तुम सब किससे कह रहे हो विक्रम ?

जाई : आजकल जब देखो तब यह उलटा ही बोलने लग जाते हैं। मुझे यह समझ में नहीं आता कि इनके साथ कैसा व्यवहार किया जाए ?

विक्रम : तो आज मैं प्रेस कान्फ्रेंस लेता हूँ। तुम दोनों एक साल तक राजेन्द्र उद्योग समूह चला कर दिखलाओ।

बलराज : यह चुनौती तुम मुझे दे रहे हो विक्रम ? मुझ पर से तुम्हारा विश्वास उठ गया है शायद। अब तुम मेरी मदद नहीं चाहते ! ठीक है, तो आज की प्रेस कान्फ्रेंस तुम ही सम्भालो। मैं जा रहा हूँ ''(जाने लगता है।)

विक्रम : (व्याकुलता से उसे रोकते हुए) नहीं बलराज—रुको—वापिस लौटो—मेरी सौगंध है तुम्हें। (बलराज रुक जाता है।) मेरे दोस्त, तुम जानते हो, मैं ऐसा आदमी नहीं हूँ—मगर फिर भी—मैं ऐसा बन गया हूँ। मेरे पैरों के नीचे की रेत खिसक रही है'''और मैं उसे महसूस कर रहा हूँ। एक जर्जर कपड़े की तरह मेरा मन छिन्न-भिन्न होता जा रहा है—जगह-जगह उसमें खरोंचें लगी हुई हैं'''क्या बताऊँ—मुझे क्या हो गया है।

बलराज : (पास आकर स्नेह से) नहीं-नहीं विक्रम, मेरे दोस्त—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। अपनी कल्पना से निर्माण की गयी एक रुकावट में तुम व्यर्थ ही अटक गये हो। तुम्हें जो कुछ लग रहा है वह बिल्कुल झूठ है। तुम दिन में सपने देख रहे हो बस।

विक्रम : (उसका हाथ पकड़कर दबाते हुए) सच ! तुम्हें ऐसा लग रहा है ?

बलराज : मुझे बस लग ही नहीं रहा है, मुझे विश्वास हो गया है कि कोई भी मजदूर तुमसे मिलने के लिए नहीं आया है'''तुमने किसी की हत्या करने के लिए न किसी को भड़काया है, और न किसी को रकम ही दी है।

विक्रम : तुम ठीक कहते हो। ऐसा ही हुआ होगा'''लेकिन फिर''' (विचारों में खो जाता है।)

बलराज : (कुछ क्षण रुककर) छोड़ो यार। (उसकी पीठ थपथपाता है।)

विक्रम : अं''' (मन सम्भालकर) हाँ-हाँ'''मैंने सब कुछ भूल जाने का निश्चय किया है। लेकिन कभी-कभी मुझे न जाने क्या हो जाता है। अगर बलराज, मेरा सन्तुलन बिगड़ रहा है तो तुम मुझे जरा सम्भाल लेना'''

बलराज : बिल्कुल चिंता न करो विक्रम, मैं एक चट्टान की तरह सदा तुम्हारे

साथ हूँ।

विक्रम : (खुश होकर) तुमने कैसे मेरे मन की बात कह दी ? सच कहूँ बलराज, तुम जिस स्नेह और ममता के साथ मुझे सम्भाल रहे हो मैं उसके योग्य नहीं हूँ। मेरा यह मन बहुत ही गंदे, खूखार, कपटी, स्वार्थी और संशयी विचारों की अंधेरी गुफा बन गया है और मैं एक नासमझ, भोले-भाले बालक की तरह उसे कुतूहल से देखते हुए उस गुफा में भीतर ही भीतर बढ़ा जा रहा हूँ।

बलराज : (बाहर का शोर-गुल सुनकर) सावधान हो जाओ, प्रेस के लोग भीतर आ रहे हैं। विक्रम, जाई उनका स्वागत करने तुम दोनों आगे बढ़ो।

(दयाल के साथ प्रेस प्रतिनिधियों का समूह भीतर आता है। हर एक के पास नोटबुक, कलम है। कुछ के कधों पर थैलियां लटकी हुई हैं और कुछ कैमरे लिये हुए हैं। विक्रम मुस्कराते हुए उनका स्वागत करता है—"आइए दोस्तो, आपका स्वागत है।" उनसे हाथ मिलाता है। जाई सबको नमस्कार करती हुई, सबका स्वागत करती है। बलराज और दयाल उन्हें यथोचित आसन देते हैं। सब बैठ जाते हैं।)

विक्रम : साथियो, इससे पहले कि आप लोग मुझसे प्रश्न पूछें, मैं एक नम्र निवेदन कर, साराश में आपको समझाना चाहता हूँ कि हम लोग क्या कर रहे हैं। बलराज, ठीक है न ?

बलराज : बिल्कुल—शुरू कीजिए।

विक्रम : दोस्तो, राजेन्द्रनगर का प्रबन्ध जब से हम लोगों के हाथ में आया है, करीबन एक महीने के अरसे में ही हम लोगों ने उस छह महीनों से चल रही हड़ताल को समाप्त करवा दिया। यह कैसे हुआ ? इसका सारा श्रेय मेरे पिताजी, कैलासवासी शिवशंकर राजेन्द्र के पुण्यों और उनकी प्रेरणा को है। मेरे पिताजी बहुत चाहते थे कि उद्योग समूह को होने वाले लाभ में मजदूरों का भी हिस्सा होना चाहिए। इसलिए'''(बलराज की तरफ़ देखकर) यह मुझे कहना चाहिए या नहीं, मैं नहीं जानता'''(बलराज उसे बोलने का इशारा करता है।) बात यह है कि मेरे पिताजी पिछले चौदह सालों से यही चाह रहे थे इसीलिए उन्हें अपने प्राण गंवाने पड़े। आज मैं उस विवरण में नहीं जाना चाहता। लेकिन, उनकी यह नीति अपनाने का निश्चय कर, मैंने सारी व्यवस्था अपने हाथों में ली। इस कारण हड़ताल समाप्त करवाने में कोई बाधा पैदा नहीं हुई। हम लोगों ने केवल इतना ही ध्यान रखा कि मजदूरों को मिलने वाले लाभ का यह हिस्सा न शराब की गंदी आदत में बहे और न ही सोना-चांदी खरीदने के मोह में अटके। इसी हेतु को पूरा करने के लिए हम लोगों ने नये संकल्प अपनाये हैं। जैसे'''

(अचानक रुक जाता है। उसे दरवाजे पर ललितागौरी का भूत दिखाई पड़ता है, केवल उसे ही। वह भौचक्का होकर···) तुम···तुम यहाँ कैसे आयी? क्यों आयी यहाँ? (वह भूत आगे बढ़ता हुआ प्रतीत होता है।) ठहरो···रुक जाओ वहीं··· (प्रतिनिधि आपस में कानाफूसी करते हैं।)

जाई : (विक्रम के पास जाते हुए) क्या हुआ? कौन आया है? आप किससे बातें कर रहे हैं? यह इस तरह क्यों देख रहे हैं? (ललितागौरी धीमे डग भरती हुई आगे बढ़ती है।)

विक्रम : रुको! आगे मत बढ़ो! आखिर तुम्हें क्या चाहिए?

बलराज : (पास जाते हुए) विक्रम, तुम्हें कौन दिखाई दे रहा है? जरा होश में आओ मेरे दोस्त। यहाँ इन प्रेस प्रतिनिधियों के सिवा और कोई नहीं आया है।

(विक्रम को दिखने वाली ललितागौरी अपना हाथ पीठ की तरफ़ ले जाती है और पीठ में घुसे छुरे को बाहर निकालती है। छुरा खून से सना हुआ है। खून से सने छुरे को उसे दिखाती है—तभी—)

विक्रम : (मारे डर के पीछे सरकते हुए वह चीखता है।) छुरा ऽऽ, नहीं नहीं। मेरा इससे कोई वास्ता नहीं है—सच पूछा जाए तो तुम बीच में आयी ही क्यों? अब मुझे यह छुरा क्यों दिखा रही हो? (कुछ टटोलते हुए) बलराज, वह छुरा छुड़ा लो पहले। दयालजी ऽऽ, हटा दो वह छुरा···

जाई : (जल्दी से बलराज के पास जाते हुए) बलराज, गजब होने से पहले ही हमें यह कान्फ्रेंस रद्द कर देनी चाहिए।

बलराज : (गड़बड़ाकर) मुझे भी यही लगता है। तुम विक्रम को भीतर ले जाओ।

जाई : (विक्रम का हाथ पकड़कर) चलिए, पहले भीतर चलकर आराम कीजिए—आपकी तबीयत ठीक नहीं है। आपको आराम···

बलराज : दोस्तो, आज श्रीयुत् विक्रमजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इन्हें फिर सिज़ोफ्रेनिया का दौरा पड़ गया है। इसलिए आज की यह कान्फ्रेंस रद्द करना आवश्यक हो गया है। आप सब इसके लिए क्षमा करेंगे।···दयाल जी···

दयाल : (तत्परता के साथ) जी! आइए! आपके लिए गेस्ट हाउस में चाय नाश्ते का इंतजाम किया हुआ है। (दयालजी उन आपस में कानाफूसी करने वाले तथा अन्य सभी पत्रकारों को बाहर ले जाते हैं। सभी पत्रकार जाते-जाते विक्रम की ओर देखते जाते हैं। उसी जमघट में ललितागौरी का भूत भी विक्रम को जाता हुआ दिखाई पड़ता है। उसे देखते हुए···)

विक्रम : (चिड़चिड़ाहट से) वह देखो, देखो वह जा रही है। गयी···चली गयी···

(निराश होकर सोफ़े पर धम्म से बैठ जाता है।)

जाई : आप ऐसा क्यों करते हैं ? न कोई आया न कोई गया। यह सारा आपके मन का भ्रम है।

विक्रम : बलराज, यह मुझे अपने खुद के घर में भी जीने क्यों नही देती ?

बलराज : कौन ? तुम्हें कौन दिखी थी ?

विक्रम : (नाराज़ी से) और कौन, मेरी माँ ? जब मैं बातें कर रहा था तो वह आयी···इस दरवाज़े से भीतर आयी···बस आगे बढ़ती गयी···और अपनी पीठ से छुरा निकाल कर···

जाई : मैंने कहा न, वह आप का भ्रम है और कुछ नही।

विक्रम : (जोश में) तो······तो······क्या वह उन लोगों में से किसी को भी दिखाई नही दी ?

जाई : नही, नही दिखी बिल्कुल, नही दिखी—फिर एक बार मैं···

बलराज : जाई, अब इस बात पर बहस बंद करो। विक्रम, अब, तुम ज़रा आराम से शांत होकर बिस्तर पर विश्राम करो। जाई, मेरी राय में डॉक्टर को बुलाकर विक्रम को कोई सेडेटिव देना होगा।

विक्रम : नही बलराज, उसकी कोई ज़रूरत नही है। सच मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक है···मैं झूठ नही कह रहा हूँ···वह मुझे सचमुच दिखी थी···

बलराज : पर मैंने कब कहा कि तुम झूठ बोल रहे हो ? तुम बिल्कुल अच्छे हो फिर भी तुम आज आराम करो। आज हम दोनों ही राजेन्द्रनगर जाएँगे।

विक्रम : केवल आज की बात मत करो मेरे दोस्त, अब तो तुम्हें और जाई को रोज़ ही राजेन्द्रनगर जाना पड़ेगा। मैं वहाँ नही जाऊँगा, बिल्कुल नही, कभी नहीं।

जाई : यह वम डर बैठ गया है तुम्हारे मन में···

विक्रम : जाई, यह डर नही है। मैं जीवित इनसान से ज़रा भी नही डरता, मगर भूत-प्रेतों से किस तरह मुकाबला किया जाता है, यह मुझे किसी ने भी नही सिखाया। मुझे···वह···भूत···(अचानक रुक जाता है। दरवाज़े की आड़ में खड़ी रूपाली उसे दिखाई पड़ती है। सम्भव है वह वहाँ बड़ी देर से खड़ी हो। वह हाथ में टेबल-टेनिस का रैकेट और गेंद लिये हुए दौड़ी आती है···)

रूपाली : डैडी, आपको क्या हो गया है ? यह भूत-प्रेत······ये सब क्या···? (विक्रम के पास चिपट कर बैठ जाती है।)

विक्रम : (उसे पास लेकर) ऐसी कोई भूत नही है बेटी। क्या तुमने इसे देखा था···वह हाथ में छुरा लिये···

रूपाली : धत् । मैंने कोई भूत नहीं देखा । मुझे तो कुछ भी दिखाई नहीं दिया ।

जाई : (गुस्से से) तो तुम बड़ी देर से दरवाजे की ओट में खड़ी सब सुन रही थी ?

रूपाली : हाँ मैं खड़ी थी वहाँ ! मुझे डैडी की चिंता लगी हुई थी । क्यों, मुझे चिंता नहीं लगेगी क्या'''(दोनों एक दूसरे की तरफ़ गुस्से से देखते हैं ।)

दयाल : प्रेस प्रतिनिधि जा रहे हैं । मैं समझता हूँ आप दोनों उन्हें विदा करने पहुँच जाएँ तो अच्छा रहे ।

विक्रम : हाँ विदा तो करना ही चाहिए । बलराज, मेरी ओर से तुम दोनों उन्हें विदा कर आओ । मेरी अनुपस्थिति के लिए क्षमा-याचना कर लेना । जाई—जाओ—अब बस रूपा की तरफ़ गुस्से से ताकती मत रहो । मेरी चिंता के कारण अगर यह ओट से सुनती रही तो उसने कोई विशेष अपराध नहीं किया है ।

(बलराज, जाई और दयाल जाते हैं । रूपाली उठती है और दबे पाँव दरवाजे के पास जाती है, फिर आहट लेती है और वापिस लौटती है ।)

रूपाली : डैडी, यह सब'''क्या है ? जब से वह आदमी आप से मिला है, आप को यह सब क्या सूझने लगा है ?

विक्रम : (चौंककर) वह आदमी ? (उसे घूरकर) उस आदमी के बारे में तुम क्या जानती हो ? वह तो चुपचाप मेरी केबिन में आकर मुझसे मिल गया था । फिर तुम्हें कैसे पता चला ? किसने बताया तुम्हें ?

रूपाली : (पास बैठकर लाड से) लीजिए, इसमें क्या है ? नाना जी उसी आदमी को लेकर ममी के पास आये थे । जब वे बातें कर रहे थे'''मैंने तभी सुनी—बस यूँ ही कानों में पड़ी'''

विक्रम : (उसे गौर से देखकर) आई सी ऽ ऽ, तो दयालजी उसे बाद में जाई के पास ले गये थे ! यह बात है'''और क्या-क्या सुना था बेटी ?'''

रूपाली : (उठकर टेबल-टेनिस की गेंद रैकेट पर उछालते हुए) मैं किसी की पीठ पीछे कुछ नहीं कहूँगी । पहले ही ममी मुझे चुगलखोर कहती हैं ।

विक्रम : तो कहने दो ! उधर ध्यान मत दिया करो ! हाँ तो बेटी, बताओ तुमने क्या-क्या बातें सुनीं ? तुम्हारे दिल में मेरे लिये कितनी फिकर है ? फिर तुम्हें जो कुछ मालूम है वह तुम्हारे डैडी को भी मालूम होना चाहिए न ? बताओ बेटी'''

रूपाली : अगर मैं बता दूँ, तो आप मुझे क्या देंगे ?

विक्रम : तुम जो माँगोगी सो'''

रूपाली : (कुछ क्षण खेलते हुए) डैडी, वो राजश्री की माँ है न ? वह उसे शूटिंग दिखाने के लिए 'कारवार' ले जा रही है । आप मुझे उनके साथ

जाने देंगे ? सुना है, खूब धूम-धड़ाका रहता है। बड़े नामी सुपरस्टार्स आने वाले हैं। कहिए, जाने देंगे ?

विक्रम : भिजवा दूंगा, उसमें कौन सी बड़ी बात है ?

रूपाली : अगर ममी ने मना कर दिया फिर भी ?

विक्रम : ममी क्यों मना करेंगी ? मगर यह सवाल ही क्यों ? एक बार मैंने तय कर लिया तो समझो तय है !

रूपाली : सोच लीजिए ! नहीं तो फिर बाद में कुछ और बहाना बना देंगे। कहेंगे, वह जयश्री की माँ तो एक एक्स्ट्रा ऐक्ट्रेस है—ये है—वो है (कहते हुए उठती है और दरवाज़े तक जाकर ज़रा टोह लेती है, फिर आते हुए) डैडी, आप ममी को जब देखो तब, चाचाजी के साथ क्यों भेजते रहते हैं ?

विक्रम : तो उसमें हर्ज ही क्या है बेटी ?

रूपाली : जब तब बस ममी और चाचाजी ! आफिस साथ-साथ जाते-आते हैं ! शापिंग को साथ, पार्टी में साथ, शो में साथ, जब देखो साथ-साथ। यह सब क्या है ? मुझे पसंद नहीं है यह। (उनके चेहरे के भाव देखती है।)

विक्रम : उसमें बुरा क्या है ? तुम तो देखती ही हो कि मैं अपने कामकाज में कितना व्यस्त रहता हूँ ?

रूपाली : तो क्या हुआ ? ममी को आपके साथ काम करना चाहिए। उन्हें चाचाजी के साथ हमेशा ही ऐसा क्या काम रहता है ?

विक्रम : (हँसकर) अब बंद भी करो दादी माँ। पहले यह बताओ कि तुमने सुना क्या है ?

(रूपाली बैट पर गेंद उछालती हुई दरवाज़े तक जाकर एक चक्कर लगाती है।)

रूपाली : सुना है कि "उस आदमी को तो मारना ही चाहिए"—यह आपकी इच्छा है, मगर इस बात को अपने आप खुद कहने में आप हिचकिचाते हैं, गट्स नहीं हैं आपमें।" यह गट्स···गट्स क्या होता है डैडी ?

विक्रम : (जैसे तान पड़ रहा है) यह कहा किसने ? तुम्हारी ममी ने कहा उस आदमी से ? सच बताओ !

रूपाली : (घबराकर) डैडी ! देखिए ! अब मुझे डर लग रहा है। अगर आपने ममी से कुछ कहा तो वह मुझे मार-मार कर मेरी चमड़ी उधेड़ देंगी।

विक्रम : तुम डरो मत। आज से तुम्हें कोई भी नहीं छुएगा और मैं तुम्हारी ममी से इस बारे में कुछ नहीं कहूँगा। अच्छा, तुमने और क्या-क्या सुना था ? बताओ बेटी, तुम्हारी ममी ने उस आदमी को क्या कुछ दिया था ? कितनी रकम दी ? बताओ···

रूपाली : (खेलते हुए दरवाज़े से बाहर झाँककर वापिस लौटते हुए) आज

नहीं फिर कभी ऽऽ···

विक्रम : (उसकी ओर देखते हुए विचारों में खो जाता है।) हूँ ऽऽ···(फिर चक्कर काटने लगता है।)

रूपाली : (फिर खेलते हुए दरवाजे से बाहर झाँकने के बाद) डैडी, जब भी राजेन्द्रनगर जाना हो तब ममी के साथ आप ही जाया कीजिए। चाचाजी के साथ ममी को मत भिजवाइए। पहले ही लोग न जाने क्या-क्या बोलने लगे हैं ?···

विक्रम : (चक्कर काटते समय अचानक रुककर) कौन हैं वे लोग ? क्या कहते हैं ? जरा साफ-साफ बताओ !

रूपाली : (घबराकर) न ···नहीं···नहीं···वैसी कोई बात नहीं है—बिल्कुल नहीं, सच कह रही हूँ—कोई बात नहीं है डैडी, मगर आप फिर यूँ ही मुझ पर मत चीखिए।

(विक्रम फिर चक्कर काटने लगता है। रूपाली खेल में लग जाती है। कुछ देर बाद—)

रूपाली : हमारी वह टीचर इतनी बुरी है डैडी,·· कहती है ऽऽ "रूपाली की माँ तो आजकल बलराज के साथ ही दिखती है ?"··· हमारी ड्राइंग टीचर से कह रही थी···हाँ ! और कहने लगी 'बिलकुल अपनी सास का अनुकरण कर रही है यह !"···यह अनुकरण···क्या···होता···है··· डैडी ?

विक्रम : (जैसे चोट पहुँची हो) कुछ नहीं ?

रूपाली : (खेलते हुए) मुझे तो आ गया गुस्सा। मैंने मौका देखकर वह केवाच खुजली पाउडर डाल दिया उस पर···बस फिर वह बैठी चिल्लपों करते हुए···(खिलखिलाकर हँस पड़ती है। इतने में उसे आहट आती है।) डैडी, वे दोनों आ रहे हैं। मैं जा रही हूँ ऊपर, अपनी पढाई करने···ध्यान रखिए। मैंने आपसे कुछ भी नहीं कहा है···ठीक !

(रूपाली फौरन भाग जाती है। विक्रम भौंचक्का-सा खड़ा रहता है। बाहर से जाई और बलराज बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।)

बलराज : अब प्रेस वालों का कोई डर नहीं रहा। अगले हफ्ते उन्हें ताज में डिनर पर बुलाकर मैं खुद सारी जानकारी दे दूँगा।

जाई : आज तुम थे बलराज तो यह सारा मामला सही-सलामत निपट गया। तुमने सब निभा लिया। अब राजेन्द्रनगर के लिए कब रवाना होना है ?

विक्रम : (रूखे स्वर से) जाई, राजेन्द्रनगर हम दोनों जा रहे हैं। बलराज यहाँ के दफ्तर का काम सम्भालेगा। सिर्फ आज ही नहीं अब यही इंतजाम

हमेशा के लिए रहेगा। मैंने तय कर लिया है।

बलराज : सोने में सुहागा ऽ, मैं भी तो यही सुझा रहा था। लेकिन तुम्हारी ऐसी तबीयत…

जाई : मगर अचानक ऐसा क्यों? इसका मतलब क्या है? अभी कुछ देर पहले ही तो आपने…

विक्रम : (चीखकर) इसका मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि मैंने सभी भूतों को भस्म करने का निश्चय कर लिया है। केवल उस ललितमहल के ही नहीं…यहाँ…इस रूपविला के भी… और अब बहस बंद—गेट रेटी… तैयार हो जाओ!

(बहुत ही आवेग से वहाँ से चला जाता है। बलराज और जाई दोनों अवाक् से बस देखते ही रह जाते हैं। इसी समय मंच पर अंधकार।)

तीसरा प्रवेश

(रूपविला का वही हॉल, पिछले प्रवेश की घटनाओं को बीते तीन-चार महीने हो गये हैं। शाम का समय है। बाहर अन्धेरा है, क्योंकि घने बादल आसमान में घिर आये हैं—उनका गर्जन सुनाई दे रहा है और बीच-बीच में बिजली भी कौंध जाती है। सारा वातावरण कुछ घुटन भरा है।

जब रंगभूमि पर प्रकाश फैलता है, तब सामने तिपाई पर बहुत से भेंट किये गये गुलदस्तों का ढेर दिखाई देता है। दयालजी टेलीफ़ोन पर किसी से बातें कर रहे हैं।)

दयाल : (रिसीवर में) नहीं साहब, नहीं। हम लोगों को कोई कल्पना ही नहीं थी। वैसे दिल्ली से उनकी रजामंदी पाने के लिए साहब को कोई खत, सीधे ही, खास उनके नाम पहुँचा हो तो नहीं जानता—हाँ कलेक्टर साहब की कचहरी से छह महीने पहले एक अधिकारी विक्रमजी की जीवनी का संक्षिप्त परिचय—बायोडाटा—लेने पहुँचा था…जी…उनके राजेन्द्रनगर वाले दफ़्तर में…लेकिन सीधे पद्म विभूषण के लिए उनके नाम की सिफ़ारिश की जाएगी, यह तो साहब—आज सुबह तक किसी को अन्दाज भी नहीं था। जी हाँ…ज़रूर, आपकी मुबारकबाद विक्रमजी को पहुँचा

दूँगा—यकीनन—जी ! (रिसीवर रख देते हैं, फिर तुरन्त घण्टी बज उठती है। जरा परेशानी से ही वे फ़ोन उठाते हैं।) हैलो···ऽऽ मैं दयाल···साहब मीटिंग के लिए गये हैं—श्रीमती विक्रम भी घर में नहीं है—अच्छा-अच्छा···पद्मभूषण मिलने पर जी···हाँ ! जरूर, अभिनन्दन उन्हें कह दूँगा। अच्छा···(रिसीवर रखते हैं तब तक जीन्स और बुश्शर्ट पहने हुए रूपाली यह कहते हुए प्रवेश करती है—"मजा आ गया, बहुत मजा आया ···" वह खिल-खिलाकर हँस पड़ती है। उसके पीछे-पीछे कुछ घबराया-सा उदय दौड़ा आता है।)

उदय : मज़ा क्या आया जानती हो, मेरे तो होश उड़ गये थे ! कोई शहर में इतनी तेज़ रफ़्तार से मोटर साइकिल चलाता भी है ? बड़ी शरारती हो, तुम तो हवा से बातें कर रही थी, मगर कहीं ऐक्सिडेंट हो जाता तो मुझे जवाब देना पड़ता, जानती हो ! पुलिस सीधे मुझे ही पकड़ ले जाती।

रूपाली : धत् तेरी, उदय यार तू भी बहुत डरपोक है। अरे डैडी के रहते पुलिस का डर ? पूछ देखो नानाजी से, मैंने डैडी की मर्सीडीज़ चलाई थी; जीप पर भी मैंने हाथ आजमाया है, इतना ही नहीं कारखाने में तो ट्रक भी चलाया है···

दयाल : और ट्रक से एक्सिडेंट भी किया है।

रूपाली : एक्सिडेंट मैंने नहीं किया नानाजी, ड्राइवर ने किया है। मान गये··· (खिलखिलाती है।)

दयाल : हाँ, बेचारे ड्राइवर को नाहक ही बलि का बकरा बनना पड़ा।

रूपाली : लो ! उसके लिए हम थोड़े ही जिम्मेदार हैं। वह एंजिन चालू रखकर तमाखू खाने गया ही क्यों था ? अपने हाथ मुसीबत मोल लेने ! ऐसों को सज़ा मिलनी ही चाहिए। (फिर खिलखिलाती है।)

उदय : अब मैं तो तुम्हें अपनी 'बुलेट' को हाथ भी नहीं लगाने दूँगा।

रूपाली : धरे रहो अपनी बुलेट। डैडी मुझे डीलक्स होंडा खरीद कर देने वाले हैं।

उदय : जानकारी देने के लिए धन्यवाद ! अब आज तो पढ़ने बैठ रही हो न ?

रूपाली : (लाड़ से नखरे के साथ) ऊँह···हूँ···मैं आज सचमुच बोर हो गयी हूँ।

उदय : रूप, तुम्हारी छमाही परीक्षा अगले पखवाड़े से है न ?

रूपाली : मैं परीक्षा में बैठ ही नहीं रही हूँ। मैं तो राजश्री के साथ फिल्म की शूटिंग देखने कारवार जा रही हूँ। अरे क्या धूम-धड़ाका रहेगा—ढिशूम···ढिशूम···(मारे खुशी के गुनगुनाती और चक्कर खाती हुई शरारत से उदय को धता बताती है। इतने में बाहर से जाई प्रवेश करती है।)

जाई : रूपाली, तुम तो बस हद से बाहर होती जा रही हो। घर कब लौटी ?

रूपाली : बस चली ही आ रही हूँ ममी। तुम्हारे आने से कुछ देर पहले यहाँ पहुँची। उदय की मोटर साईकिल हवा में उड़ाती आई हूँ, फ़र्राटे के साथ··· फर्र···

जाई : उदय, तुम इसकी गलत-सलत जिद कभी पूरी मत किया करो। अब क्या यह इसकी उम्र है मोटर साइकिल दौड़ाने की ?

उदय : इसी से पूछ देखिए, यह वहाँ से कैसे निकल पड़ी। मुझसे पूछे बगैर इसने इंजिन शुरू किया और गेट पार कर ही रही थी कि इस पर मेरी नज़र पड़ी। मैंने दौड़कर छलांग मारी और उछलकर सीट पर बैठ गया। अब इसे डाँटने से नहीं चलेगा—ऐसी शरारत यह तीन बार कर चुकी है।

जाई : अब तुम ही कह देखो इसके डैडी से। लेकिन उसका भी कोई असर नहीं होगा इस पर। यह तो एक दिन अपने हाथ-पैर तोड़ेगी, तब इसे अक्ल आयेगी।

रूपाली : बस रहने दो ममी ! मैं ऐसी कच्ची मिट्टी की नहीं बनी हूँ जो मेरे हाथ-पैर टूट जाएँ। हिम्मत रखती हूँ, हिम्मत !

जाई : तुम्हारी हिम्मत की तो दुहाई है। मुझे बताये बगैर तुम वहाँ से चली आयी। मैंने तुम्हें रुकने के लिए कहा था न ? और कुछ देर रुक गयी होती तो क्या हो जाता···

रूपाली : अब मैं कब तक रुकी रहती ममी ? तुम्हारी और चाचाजी की बातें खतम होने का नाम ही नहीं ले रही थी और मैं बैठे-बैठे बिल्कुल बोर हो गयी थी।

जाई : वहाँ से चलने से पहले तुमने किसे फोन किया था ?

रूपाली : टेलीफ़ोन ? नहीं तो—मैंने किसी को टेलीफ़ोन नहीं किया, ममी।

जाई : रूपाली, अब झूठ मत बोलो ! मुझे पता चल गया है कि तुमने फ़ोन किया था। बलराज के बंगले के चौकीदार ने मुझे सब बता दिया है।

रूपाली : अरे हाँ ! उस फ़ोन के बारे में ! याद आया, मैंने 55 डैडी को फोन किया था···मुझे···वो···अपना यह···क्या कहते हैं बस यूँ ही खटखटा दिया फ़ोन··· !

जाई : तुमने क्या कुछ कहा होगा यह मैं सब जानती हूँ। सारा अनुमान है मुझे।

रूपाली : मैंने···मैंने कुछ नहीं कहा है···चाहें तो डैडी से पूछ देखिए। बस इतना ही कहा है कि मैं ममी के साथ बलराज चाचाजी की कोठी पर हूँ। सच···

जाई : तुम्हारा सच···रूपाली तुम जो कुछ कर रही हो, वह ठीक नहीं है। मैं तुम्हें पहले से ही सचेत किये दे रही हूँ।

रूपाली : मगर मैंने ऐसा किया ही क्या है ममी ! (बुड़बुड़ाती हुई) जब देखो मुझ पर झूठा दोष लगाती रहती हो ! मगर क्यों ?…

जाई : पिताजी, आप ज़रा ऊपर चलिए । मुझे आपसे कुछ खास बातें करनी है । (रूपाली से) और सुनो, तुम आड से सुनने के लिए फ़ौरन ऊपर मत चली आना कि हम क्या बातें कर रहे है । (जाई ऊपरी मंज़िल पर जाती है और पीछे-पीछे दयाल भी…फिर—)

रूपाली : मुझे क्या पड़ी है ऊपर आने की ? मेरी बला से ! ज़रा डैडी को घर आने दो, तब पता चलेगा । फिर बैठेंगी घंटों सिसक-सिसक कर रोते हुए । (हँसती है ।)

उदय : यह सब क्या कह रही हो रूप ?

रूपाली : अरे कुछ नही, बस यूं ही मज़ाक है । ममी को ज़रा चक्कर में डाला है । (हँसती है ।)

उदय : ममी को इस तरह परेशान करने मे तुम्हें मज़ा आता है ? यही तुम्हारा चक्कर है न ?

रूपाली : तो, मुझे बेरहमी से मारते समय उन्हें कुछ नही लगता ? उनके तो हाथ खुजलाते है मुझे मारने के लिए ।

उदय : उसका तुम इस तरह बदला लेती हो, यह बिल्कुल उचित नही है रूप ।

रूपाली : अजी महाराज, अब तुम…क्या तुम भी मुझे उपदेश की खुराक देने जा रहे हो ?

उदय : यह मैं तुम्हें उपदेश नही दे रहा हूं रूप । लेकिन…

रूपाली : नही, एक बार उपदेश दे ही डालो, फिर देखो । यहाँ से तुम्हें अपनी मोटर साइकिल सिर पर उठाकर ले जानी पड़ेगी । अरे दोनों पहियों पर कचा-कच चाकू के वार और बेड़ा पार ! (खिलखिला देती है । उदय हताश होकर उसे देखता रहता है । इतने में रूपाली को आहट सुनाई देती है । उसके चेहरे की शरारत रफ़ू हो जाती है और—) देखो, डैडी और चाचाजी आ रहे हैं । उनसे कह देना मेरी पढाई पूरी हो गयी है—समझे । मैं चली…(फ़ौरन चली जाती है । उदय बस देखता ही रहता है । इतने में बलराज और विक्रम बातें करते हुए आते हैं । विक्रम भीतर आता है, बलराज दरवाज़े पर ही रुक जाता है । विक्रम आते-आते कहता है—)

विक्रम : मुझे डायरेक्टरों की जगह मूर्ख और लट्ठमार लोगों की भरमार नही करनी है । मुझे ऐसे लोग चाहिए जो काम करने से मुँह नही मोड़ते, जो हमारे लिए उपयोगी हो सकते हैं और खासकर वे लोग जो इस इंडस्ट्री मे रकम की बजाय कुछ और मूल्यों को महत्त्व देते हैं, उसके बारे मे सोचते हैं…

बलराज : तुम्हारी इस नीति को ध्यान में रखकर ही मैंने इन नामों को चुना है। यह फ़ाइल आज रात को तुम गौर से देख लेना फिर...

विक्रम : वह तो देख ही लूंगा। मगर तुम यह सब दरवाजे पर खड़े-खड़े ही क्यों कह रहे हो ? भीतर तो आओ...

बलराज : बस, मैं अब चलूं। उदय, तुम यहाँ कैसे आये हो ? अपनी गाड़ी...

उदय : मैं तो मोटर साइकिल पर ही आया हूँ। अभी अपनी गाड़ी गैरेज से नहीं आयी है। कहिए तो ले आऊं ?

बलराज : नहीं कोई बात नहीं। मैं उस तरफ घूमते हुए निकल जाऊंगा गाड़ी लेने।

विक्रम : क्यों उदय, रूपाली की पढाई तो ठीक चल रही है ? वैसे जब तुम हो तब चिंता की बात ही नहीं है। बलराज, अब इस उदय को किसी एक्ज़ीक्यूटिव कैडर में रखना चाहिए।

बलराज : अभी इसके लिए समय नहीं है। अच्छा उदय, अब तुम जा सकते हो। (उदय के जाने के बाद) अब काम-धंधे की बात कुछ देर के लिए भूल जाओ। मैं अब तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।

विक्रम : भीतर भी आ रहे हो...या बस बाहर से ही बातें करने वाले हो ?

बलराज : (नजर मिलाते हुए) क्या तुम सही मन से चाहते हो कि मैं तुम्हारे घर में आऊँ ?

विक्रम : (ताना मारते हुए) शुद्ध मन से आ रहे हो तो स्वागत है—सदैव !

(कुछ क्षण दोनों एक दूसरे को देखते रहते है फिर—)

बलराज : (हँसते हुए भीतर प्रवेश कर) मैंने यह तय किया था कि तुम्हारे घर में कदम नहीं रखूंगा। लेकिन आज तुम 'पद्म विभूषण' से सम्मानित हुए हो। हम सबके लिए यह महान् दिवस है। आज के दिन तो मुझसे बाहर नहीं रहा जा सकेगा। (हाथ मिलाते हुए) मेरे दोस्त अभिनन्दन, हार्दिक अभिनन्दन।

विक्रम : (जरा कड़वाहट से) आज सुबह-सुबह उठते ही यह मुबारकबाद फ़ोन पर दे दिया होता तो मुझे कितना अच्छा लगता।

बलराज : यह समाचार तुम्हें कल रात में ही मिल चुका था। अगर मेरा साथी पुराना यार रहा होता तो तुरन्त मेरे पास खुद दौड़ा आता। खैर छोड़ो। अरे कभी नहीं से देर ही भली...

विक्रम : वैसे अब पहले जैसा रहा ही कौन है ? यह सच है कि मैं अब वह नहीं रहा, मगर तुम भी तो पहले जैसे नहीं रहे। उसके बदले...

बलराज : बंद करो। मेरे बारे में तुम्हारा मन कलुषित हो चुका है...खराब हो चुका है। तुम्हारे मुँह से निकलने वाले गंदे इलजाम मैं बिल्कुल

बर्दाश्त नही कर पाएँगा। मेरे शब्दों पर विश्वास रखो। शुद्ध मित्रता के सिवा मैंने कभी जाई की तरफ गलत नजर से नही देखा।

विक्रम : (रूखेपन से) उम्मीद तो यही करता हूँ। आइ होप सो…

बलराज : होप सो ? (धक्के और दुःख से) मतलब यह हुआ कि तुम्हारा भरोसा नही है मुझ पर…मेरे शब्दों पर भी अब तुम्हारा विश्वास नही रहा है।

विक्रम : (क्षुब्ध होकर) शब्द-शब्द-शब्द। शब्दों से अंतःकरण का तल दृष्टि-गोचर होने के दिन बीत गये बलराज। अब तो शब्दों का उपयोग होता है मतलबी जहर को मखमली जामा पहनाने के लिए।

बलराज : तुम्हारे गहरे विश्वास को आघात पहुँचाकर, तुम्हारे भरोसे के अयोग्य बनने के लिए मेरी तरफ से क्या ऐसा कोई भी काम हुआ है, बताओ ?

विक्रम : क्या बताऊँ ? व्यभिचार कभी भी एक ही रात्रि में आकार नही लेता। जब उसका पर्दाफाश होता है तब तक तो वह बहुत दूर तक फैल चुका होता है। इन मामलो मे मित्रता का मधुर रूप लेकर ही विश्वासघात दबे पांव घर में पदार्पण करता है।

बलराज : इस तरह छाती ठोककर अभियोग लगाने के लिए…

विक्रम : प्रमाण चाहिए…सबूत। अगर सबूत ही दिया जा सकता तो फिर तुम यहाँ खडे न होते। व्यभिचार और विश्वासघात दोनों में ही एक तीव्र गंध होती है जिसे बस संबंधित व्यक्ति ही सूँघ सकता है। मुझ पर जो आघात हुए है और मेरे मन की जो कमजोर हालत है, इनका तुमने पूरा-पूरा फायदा उठाया है। तुम केवल मित्र ही नही रहे, हमारे रक्षक, त्राता, मार्गदर्शक, सब कुछ बस तुम ही बन गये। तुम्हारे बगैर हम पंगु हैं, निराधार हैं, असहाय हैं—बस तुम ही हो एक बहादुर, काबिल, करिश्मे करने की ताकत रखने वाले राजकुमार ! उसके लिए तो तुम साक्षात् ईश्वर के अवतार हो ?

बलराज : यह सब तुम क्या बक रहे हो विक्रम ?

विक्रम : मैं तो सिर्फ असलियत बयान कर रहा हूँ। जो दोस्त बनकर दूसरे की गृहस्थी में प्रवेश करता है और घरबार के लिए देवता बन जाता है वह पत्नी को नैवेद्य रूप में स्वीकार किये बिना संतुष्ट नही होता। जाई के मन मे मेरे लिए प्रेम बाकी नही है, कोई खिचाव रहा नही है। उसका सारा मन तुमने जीत लिया है। तुम ही तुम समा गये हो उसके मन मे। मेरा सारा अस्तित्व ही तुमने शून्य कर दिया है। मैंने तुम्हे इस घर से हटाया जरूर मगर उसके मन मंदिर में तो तुम ही बसे हुए हो। मैं फिर पड़ गया

हूँ···अकेला···एकाकी···

बलराज : विक्रम, तुम जो कुछ कह रहे हो उसमें सचाई तो लेश मात्र भी नहीं है, मगर तुम्हें यह मनवाना अब मेरे लिए संभव नहीं है। तुमने खुद ही संदेह के इन भूतों को अपने मन में जगाया है। रूपाली ने तुम्हारे कान भरे हैं। इतने कच्चे कान का होना तुम्हें शोभा नहीं देता। अरे, अपनी बेटी पर वात्सल्य की छाया में पनपा अंधा विश्वास अंत में सर्वनाश को ही निमंत्रण देगा। मेरे मित्र, अभी भी जागो—अब तो सचेत हो जाओ। (कंधे पर हाथ रखता है।)

विक्रम : (गुस्से से हाथ झटक देता है।) आखिर दोष थोप रहे हो रूपाली पर, मेरे पागल वात्सल्य पर, मेरे कच्चे कानों पर? इस तरह छूट कर निकल भागना चाहते हो! मगर मेरी आँखें खुल चुकी हैं—मैं जाग गया हूँ···गुड बॉय···(पीठ फेर लेता है।)

बलराज : (हताश होकर) बस तो अब सारी बातचीत ही बंद, इसलिए मौन धारण करने में ही हित है। जब तुम्हारी सही मायनों में आँखें खुलेंगी, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। अच्छा मित्र···अब विदा।

(बलराज चला जाता है। विक्रम अपने आप से ही झुंझलाते हुए—)

विक्रम : इतना नितांत बावला वात्सल्य, यदि निमंत्रित करता है सर्वनाशी अंत,
तो कौन बचा सकता है मुझे संसार में डूबने से?
एक साथी, विश्वासघाती, या कि कामुक कामिनी पत्नी मेरी।
मगर क्या जरूरत है, किसी को शंख-नाद करने की।
"जाग्रत हो—जागे रहो, देखो आँखें खोलकर"
खुली हुई हैं आँखें मेरी, दृष्टि बहुत ही सतर्क सजग है,
जितने देखे रंग-रूप, इन आँखों ने, उतने ही से भर पाया मैं,
शक्ति दृष्टि की।
अब दृष्टिहीन हो जाऊँ मैं यदि,
तब हो जाएगी यह भ्रष्ट दुनिया,ओ, दृष्टि ओट।
इतनी सीधी, इतनी भोली, इतनी निष्पाप, इतनी अजान, मेरी संतान—क्या है अपराध इसका?
यही बस कि ज्ञात हो गयी उसे, निर्लज्ज प्रेमियों की प्रणयलीला और
उस झुलसते मन के फफोले फूट पड़े, वाणी बन, बाप से मिलते ही।
और यह बाप, कितना अभागा, नीच, पापी!
न फोड़ सका अपने कान कच्चे, न खींचा आँख पर परदा, निर्लज्जता का;
सजग होकर खुली आँखों देखता है बेहयाई।
है दुहाई देवता की, गेह में क्या फिर मिलेगा, वही अनुभव,

उस विषारी दंश का ?
बेशरम सी बेवफाई—पर पुरुष का संग कपटी ?
टोह लगते ही कपट की, मित्र हो या संगिनी हो;
दूसरा इनसान, उनका नाश कर देता, दिखाकर पुरुषार्थ अपना।
मैं मगर बस जल रहा हूँ, घुट रहा हूँ मन ही मन में।
अंतरंगों के अनोखे जाल में उलझा हुआ मैं,
निकल पाता ही नहीं, तोड़ सकता भी नहीं, उस जाल को।
क्यों ?—मगर क्यों ?—किस लिए ?

(विक्रम अपने विचारों में खोया हुआ है तभी भीतर से जाई का प्रवेश। उसकी भाव मुद्रा पर तनाव है।)

जाई : अभी बलराज यहाँ आये थे ?

विक्रम : हाँ। आये भी और चले भी गये।

जाई : तुरन्त ही चले गये ? उन्हें ज़रा रोक लेना था।

विक्रम : संभव है तुम्हारा आग्रह होता तो वह रुक जाता।

जाई : कम से कम आज के दिन तो उनका मुँह मीठा कराना चाहिए था।

विक्रम : (ताने के साथ) हाँ ऽऽ, मगर जब तुम उससे मिलने बंगले पर गयी थीं —तब तो उसका मुँह काफ़ी मीठा हो गया होगा। इसलिए...अब...

जाई : (दुखी होकर) छिः ! अपनी पत्नी के लिए इस तरह की बातें कहते हुए आपको कुछ बुरा नहीं लगता ?

विक्रम : अगर पत्नी अपनी रही हो, तब हो सकता है—कुछ...

जाई : इस तरह का गंदा अभियोग लगाने के लिए आपके पास क्या प्रमाण हैं ?

विक्रम : फिर वही प्रमाणों की बात ! लोग आजकल बहुत चतुर हो गये हैं। वे लोग प्रमाणों के पुछल्ले छोड़कर इस तरह के पाप नहीं करते। लेकिन उनकी आँखें ही सारा भेद खोल देती हैं। जहाँ नजरें चार हुईं कि वहीं पता चल जाता है। या तो नफ़रत उबल पड़ती है या प्यार की फुहार उमड़ आती है फौरन। यह नयनों की भाषा तो आपस में समझ आ ही जाती है। अगर आँखें अनुभवी हों तो पराया भी ताड़ लेता है प्यार की भाषा। विशेषकर घायल पति...मुझ जैसा।

जाई : झूठ, सरासर झूठ है। यह सब आपके मन की दूषित कल्पनायें हैं, जो आप मुझ पर झूठा लांछन लगा रहे हैं और वह भी बिना वजह।

विक्रम : (ठण्डे स्वर में) संभव है।

जाई : संभव नहीं जानबूझ कर। आपने एक बार मुझे संकेत किया, तभी से मैंने अपने व्यवहार को बदल दिया था। अपनी इच्छा न होते हुए भी केवल आपकी ख़ुशी के लिए मैंने आपका कहना माना। आप भी जानते हैं कि मैं

बलराज के साथ कहीं भी नहीं जाती। मैं उनसे अकेले कभी नहीं मिलती। उन्होंने भी हमारे यहाँ आना तक बंद कर दिया है। फिर भी आप···

विक्रम : आज ही तुम उससे अकेली जाकर मिली हो।

जाई : मैं अकेली नहीं गयी थी, मेरे साथ रूपाली भी थी।

विक्रम : रूपाली···एक भोली, नासमझ बेटी !

जाई : वह इतनी भोली नहीं है। उसने वहाँ से आपको फ़ोन किया है और झूठी-झूठी बातें···

विक्रम : शट अप ! उसने मुझे बस इतना ही बताया था कि तुम बलराज से मिलने आयी हो—और कुछ नहीं कहा उसने। उस बेचारी को यूँ बदनाम मत करो।

जाई : तो फिर आज आप इस तरह आपे से बाहर क्यों हो रहे हैं ?

विक्रम : केवल इसलिए कि मेरे आदेश की अवहेलना कर तुम उससे मिलने क्यों गयीं ? मेरी सख्त हिदायत···

जाई : मैं उससे क्यों मिलने गयी थी, वहाँ मैंने उससे क्या बातें कीं, इस बारे में कुछ भी उससे पूछा आपने ?

विक्रम : मैं उससे क्यों पूछूं ? वह होता कौन है ?

जाई : यह आप मुझसे पूछ रहे हैं कि वह कौन होता है ? वह आपका मित्र है, आपका जानी-दोस्त है···

विक्रम : हमारी दोस्ती खत्म हो गयी। वह बस अब मेरा बिजनेस पार्टनर है, साझेदार है।

जाई : आपने उससे दोस्ती तोड़ दी इसलिए क्या मुझे भी उससे दुश्मनी ही करनी चाहिए ? वह मेरा भी बचपन का मित्र था···और है।

विक्रम : अपने पति के सिवा पत्नी का कोई और मित्र हो ही नहीं सकता—होना भी नहीं चाहिए, यह मेरा अटूट विश्वास है, मेरी पक्की राय है।

जाई : आपका यह अटूट विश्वास, यह पक्की राय कब से है ? जब से उस सात जन्म की वैरन ने आपके कच्चे कान भरे हैं तब से न ?

विक्रम : मैं तुम्हें एक बार फिर ताक़ीद देता हूँ कि तुम रूपाली को हमारी इस बहस में मत खींचो ! उसने मुझे बस उतना ही कहा है, जितना उसके कानों में पड़ा है—और वह भी इसलिए कि उसे लोगों से यह सुनना नसीब हुआ है ! यदि एक लड़की चाहती है कि उसके माँ-बाप एक दूसरे के लिए वफ़ादार रहें, तो क्या यह उसका कसूर है ?

जाई : रूपा के बारे में आप सिफ़ारिश मत कीजिए। वह क्या है—कैसी है, यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ और दूसरे लोगों की तो बात ही मत कीजिए—वे दोगले होते हैं, दो मुँह वाले, बेरहम ! वे जो चाहें सो बक

सकते हैं। उस बूते पर क्या आप मुझे बदचलन ठहराएँगे ? लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि आपने ही उस आदमी को भड़काकर प्रियरंजनदास और माँ साहिबा का खून···

विक्रम : (चिढ़कर चीखते हुए) झूठ है—बिल्कुल झूठ है। वह आदमी 'राऊ' तुमसे मिलकर गया था, यह बात तुमने मुझसे छिपाए रखी थी, मुझे कभी नहीं बताई।

जाई : और 'राऊ' आपसे आकर मिला था यह बात आपने मुझे कब बताई ?

विक्रम : मगर फिर भी तुमने उसे उकसाया है, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इतना ही नहीं, तुमने उसे···

जाई : जरा सम्भल कर अभियोग लगाइए। मैं भी आप पर यही इलजाम लगा सकती हूँ !

विक्रम : शायद समझदारी की यह सीख तुम्हें बलराज से मिली है ! क्यों ?

जाई : जहाँ देखो वहाँ बलराज को क्यों खींचते हैं ? उस पर जो चाहे सो दोषारोपण क्यों करते रहते हैं ? उसी ने इस मामले से आपको बचाया था। बस इतना ही नहीं, वह आज तक न जाने कितने, तरह-तरह के झंझटों से आपको उबारता रहा है, आपका पूरा साथ देकर। आप ये सारी बातें बिल्कुल भूल गये हैं।

विक्रम : इन्हीं उपकारों के बदले तुम उससे प्यार करने लगी हो। सच है न ?

जाई : प्यार के बारे में आप क्या कह सकते हैं···आपने तो अपने सारे जीवन में बस एक ही प्यार देखा है—नर और मादा का प्यार ! बहन भाई के पवित्र प्रेम से आपका कभी कोई सरोकार ही नहीं रहा।

विक्रम : ये सारी फिजूल की बातें रहने दो ! क्या बलराज से तुम प्रेम नहीं करती ? क्या वह तुम्हें पसंद नहीं है ? उससे मिलने के लिए तुम लालायित नहीं रहती ? तुम्हारी जान फड़फड़ाती है—मछली की तरह !

जाई : हाँ ! हाँ ! लेकिन आप जो समझते हैं उस मतलब से नहीं—क़तई नहीं। पुरुष और नारी का प्रेम शुद्ध, सात्विक और निर्मल भी हो सकता है, यह बात आपकी समझ में कभी नहीं आएगी।

विक्रम : यह नाता एक पाखंडपूर्ण बकवास है ! पति की आँखों में खुलेआम धूल झोंककर, पवित्र कहलाने का दंभी तरीका है। मैं जानता हूँ अच्छी तरह कि तुम मुझ से बिल्कुल प्रेम नहीं करती, मैं अब तुम्हें फूटी आँखों भी नहीं भाता।

जाई : मैं आपकी चिंता में दिन-रात बेचैनी से मरी जा रही हूँ, फिर भी आप···

विक्रम : नहीं। तुम मरी जा रही हो इस परेशानी में कि वह तुम्हें कब हमेशा के लिए मिल जाए ! तुम दोनों एक दूसरे पर लट्टू हो चुके हो—लम्पट—

हो गये हो !

जाई : मेरे और उसके बीच यह लट्टू और लम्पट होने की, क्या अब हमारी उम्र रही है, या रूप रहा है ? जरा कुछ तो सोचिए'''हमारा आपस में यह गंदा नाता कैसे हो सकता है ?

विक्रम : यह लम्पटता न उम्र देखती है न रूप ! फिजूल की दलील है तुम्हारी ! कामातुराणां न भयं न लज्जा। मेरी माँ ने जब उस नराधम से सहवास किया, तब क्या थी उसकी उम्र—और क्या बचा था उसकी जवानी में ? बताओ ? बोलो ?

जाई : जब देखो बस अपनी माँ से तुलना ! आप मुझे अपनी माँ की पंक्ति में लाकर क्यों खड़ी करना चाहते हैं ?

विक्रम : मैंने नहीं, तुम्हारी अपनी करनी ने—लोगों को, यहाँ तक कि तुम्हारी बेटी को, मजबूर किया है यह कहने के लिए ।

विक्रम : (गुस्से से आग-बबूला होकर) चांडालिनी, चुड़ैल, पिशाचिनी, मनहूस, आपकी माँ का खून लेकर ही मेरी कोख में आयी होगी निश्चित ।

विक्रम : (भड़क कर) क्या कहा ? जरा फिर दुहरा कर तो देखो ! (उसके दोनों कंधों को झकझोरते हुए) तुम्हारी—मेरी रूपाली ? मेरी माँ का खून लेकर ? यह शाप भरी वाणी कहते हुए तुम्हें लाज नही आती । अरे उसकी माँ हो, या बैरन हो जन्म-जन्म की ! बलराज ने एक कुटिल बात कही थी और मैंने उससे फौरन नाता तोड़ दिया । अगर तुमने भी'''

जाई : (अपने को उसके पंजों से छुड़ाते हुए) तो फिर मुझ से भी तोड़ डालिए नाता और ढकेल दीजिए मुझे रास्ते पर'''

विक्रम : वाह, खूब ! तुमसे नाता तोड़कर तुम्हें रास्ते पर फेंक दूँ ? तब तो तुम दोनो के लिए अपने आप ही रास्ता खुल जाता है ! फिर तो बस दो प्रेमीजनों का मधुर मिलन ही बचा । वह सम्मेलन सहज ही मनाया जा सकेगा। बड़ी सजधज, बड़ी धूमधाम से बैंड वाजो के धूम धड़ाके मे । मना डालो विवाह समारोह और उसके बाद आलीशान दावत'''लॉन पार्टी'''क्यों ? (विकट हँसी के बाद अचानक क्रूरता के स्वर मे) भूल जाओ । फ़ारगेट इट ! मैं इस तरह तलाक देकर तुम्हें छोड़ने वाला नहीं हूँ और न ही तुम्हें पालने ही वाला हूँ पहरा बिठाकर, और न ही तुम्हें घर से भागने का मौक़ा देने वाला हूँ । मैं तुम्हें खत्म कर देने वाला हूँ । न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी । बेवफाई की सजा मैं तुम्हे पहले दूँगा और फिर तुम्हारे प्रेम में दीवाना होने के लिए अपने आपको मार डालूँगा। बस क़िस्सा ही खत्म ! (उसके पास जाकर) तुम जिस तरह कभी मेरी न हुई उसी तरह तुम किसी और की कभी हो ही नही सकोगी—बस, देट्स फाइनल ।

जाई : (घबराकर पीछे हटते हुए) मेरी सौगंध—कसम है मेरे सिर की—मैं हमेशा आपकी ही रही हूँ, आपकी ही हूँ—आपकी ही रहूँगी ! सच मानिए आपके सिवा किसी ने मुझे स्पर्श तक नही किया है। फिर बलराज··· के स्पर्श करने का तो सवाल ही नही है।

विक्रम : (उसे अपने पाश मे जकड लेता है। उसके केशों को बड़े प्यार से संवारते हुए, कर्कश चमत्कारिक आवाज में, स्वगत) आय डोन्ट विलीव ! मुझे ही क्या किसी को भी विश्वास नही होगा इस सौगंध पर।···तुम बहुत ही सुन्दर हो—तुम्हारी इस सुन्दरता का मोह किसे नहीं जकड़ सकता ? कौन नही कर सकता है पाप इसका उपभोग करने के लिए ? ऐसे सौंदर्य को तो सदा के लिए शांत कर देना चाहिए ! (यह कहते-कहते वह अपने दोनों हाथों से उसके केशो को सहलाते हुए, आखिर अपने दोनों पंजों से उसकी गर्दन पकड़ लेता है, वैसे ही···)

जाई : (घबराकर) यह···आप···क्या कर रहे हैं ?

विक्रम : पहले तुम···और बाद में मैं···

जाई : (चीखती है)—दौड़ो—बचाओ—दौड़ो मुझे बचाओ !

(विक्रम उसका गला दबाने लगता है—इतने मे भीतर से रूपाली दौड़ी आती है—चीखते···चिल्लाते···)

रूपाली : नही डैडी, नही। ममी की जान मत लीजिए···उनका गला मत घोटिए···ममी ने कुछ नही किया है डैडी···वह निर्दोष हैं···अच्छी हैं मेरी ममी। मैं ही झूठ बोली थी···मुझे सजा दीजिए। मगर ममी को छोड़ दीजिए। उनकी जान मत लीजिए···अपने आप को भी मत मारिए ! छोड़िए छोड़िए, उन्हें···(रूपाली विक्रम से छीना-झपटी में भिड़ जाती है और उन्हे खीचकर अलग करती है। फिर विक्रम से लिपट कर सिसक पड़ती है।) नही डैडी, नही, मुझे आप चाहिए—आप ही इस तरह जान दे देंगे, तो मैं किसके सहारे जिऊंगी। आपके सिवा मेरा दूसरा है कौन ?

(विक्रम का गला भर आता है। वह विह्वल हो जाता है। जमीन पर गिरी हुई जाई उठ बैठती है। मारे धक्के के उसकी वाणी जाती रही है। एक बावरी की तरह वह अपने अंग सिकोड़े, एक पोटली सी स्तब्ध बैठी टकटकी लगाए देख रही है—और···)

विक्रम : (रूपाली को छाती से लगाकर) नही बेटी···मैं तुम्हारी माँ की जान नही लूंगा। हाँ मुझे जीना ही चाहिए। मेरे सारे रिश्ते, सभी सम्बन्ध, भले ही झुलस गये हो, मगर मैं अपनी भोली, नाजुक कली पर उसकी ज़रा भी आँच नही आने दूँगा। बेटी, तुम्हारे लिए तो मुझे जीना ही चाहिए।

(अंधकार फैल जाता है।)

—दूसरा अंक समाप्त—



तीसरा अंक

तीसरा अंक

प्रथम प्रवेश

(पिछले अंक की घटनाओं के बाद लगभग बारह वर्ष बीत चुके हैं। विक्रम अपनी आयु के पचास साल पूरे कर चुका है। लेकिन अनेकों अनुताप-परिताप, मनोव्यथा के आघातों को सहन कर और चिंताओं की चिनगारियों और व्याकुलता की अकुलाहटों को झेलकर, वह अपनी उमर से अधिक ही वृद्ध दिखाई पड़ने लगता है। उसके सारे केश तो शुभ्र हो ही चुके हैं, साथ ही चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, रेखायें भी उभर आयी हैं और अपने बुढ़ापे के कारण उसकी कमर भी कुछ झुक सी गयी है। मधुमेह और रक्तचाप के विकारों ने उसको खोखला बना दिया है। हाल ही में उसे दिल का एक दौरा भी पड़ चुका है। लेकिन राजेन्द्र विक्रम उद्योग समूह की कार्यक्षमता पर उसका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ है। इसके विपरीत उस औद्योगिक प्रतिष्ठान का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है। हृदय का झटका लगने के बाद उसने प्रत्यक्ष रूप से अपने आपको काम-काज से दूर रखना आरम्भ कर दिया है। इसलिए रूपाली ने अपनी कालेज की पढ़ाई छोड़कर, अपनी उमर के बीस वर्ष पूरे करने से पहले ही अपने पिता के कामकाज में हाथ बटाना शुरू कर दिया है, और वह उन्हें पूरा सहयोग दे रही है। अपने साहस और कार्यकुशलता के बल पर उसने सारे उद्योग समूह के सूत्र अपने समर्थ हाथों में सम्भाल लिये हैं। केवल इतना ही नहीं उसने सारे उद्योग समूह का सर्वतोन्मुखी विस्तार भी किया है। अपनी आयु की पच्चीसवीं देहली पार कर उसने अपने यौवन की मोहकता में भी चार चाँद लगा लिये हैं। उसकी योग्यता का तेज अद्वितीय है। उदय का उसकी कार्य-सफलता में बहुत सहयोग रहा है। जबसे व्यवसाय का सारा कार्य-भार रूपाली कुशलता से सम्भाल रही है तभी से विक्रम धीरे-धीरे इस कार्य-भार से सेवा निवृत्त होने का विचार करने लगा है। उसकी कार्य-कुशलता के दोनों आधार भिन्न-भिन्न कारणों से उसके हाथों को लूला बना गये हैं। क्योंकि बलराज ने साझेदारी छोड़ दी है अतः एक फार्म खरीदकर वह किसानी करने लगा है। उस व्यवसाय को भी उसने अपने लिए बहुत कुशलता से चलाया है। बारह साल पहले की उस विचित्र घटना का जाई पर इतना भीषण आघात हुआ है कि वह अब तक भी बोल नहीं सकती है। उसके दिमाग पर ऐसा कुछ असर हो गया है कि वह बस टकटकी लगाकर देखती रहती है। बीच ही में कभी-कभी वह

अपने आप खीज भरी हँसी हँस देती है, अवश्य स्वयं ही सिसक पड़ती है; यों तो फिर कभी-कभी एक करुणा भरा गीत ही गुनगुनाती और दुहराती रहती है। उसकी समझ समाप्त हो चुकी है, भले ही विक्रम ने उसे इन बारह सालों में जी-जान से सम्भाला है, उसकी सेवा-टहल में कोई कसर नहीं की। विक्रम का भरोसा ही नहीं, विश्वास है कि उसकी सेवा निरर्थक नहीं जाएगी, एक न एक दिन जाई अवश्य बोल पाएगी। वैसे वह सुधर रही है—अब वह कही गयी बातें समझने लगी है—मगर यह बस उसका अपना अनुमान है। डॉक्टरों ने बहुत दिनों पूर्व ही अपना निष्कर्ष बता दिया था कि जाई का अब पहले की तरह चंगी हो सकना सम्भव ही नहीं है। मगर विक्रम के लिए तो जब तक साँस है तब तक आस कायम है। दयाल जी अधिक ही वृद्ध हो चुके हैं। वैसे तो वह बहुत पहले ही सेवा-निवृत्त हो चुके होते, मगर उन्होंने रूपाली की अभिरक्षा में लगे रहना अभी आवश्यक समझा है। वह अपनी पूर्ववत् निष्ठा और आत्मीयता से नयी स्वामिनी की सेवा में रत हैं।

रूपविला का वही हॉल ! उसकी सज्जा में अधिक नवीनता आ गयी है। पास में रखा हुआ टेलीफोन भी अत्याधुनिक है। समय सुबह के आठ-साढ़े आठ बज चुके हैं। हॉल में और कोई नहीं है। दयालजी फोन पर बातें कर रहे हैं।)

दयाल : (फ़ोन के रिसीवर में) हाँ-हाँ ! वह सब ठीक है, मगर आपको जो कुछ कहना हो, उसके लिए बहन साहिबा को, दिल्ली से लौटने दीजिए। तब तक तो आपको इन्तज़ार ही करना होगा। नहीं-नहीं, विक्रम साहब से मिलकर कोई काम नहीं बनेगा ! पिछले दो-तीन सालों से बस बहन साहिबा ही सारा कारोबार सम्भाल रही है। जी हाँ ! विक्रम साहब की तबियत इन दिनों कुछ ठीक नहीं रहती है।···अजी साहब यह बस उम्र की वजह से नहीं है ! अभी तो करीबन पचपन साल के ही हुए होंगे ! मगर यह ब्लड प्रेशर और डाइबिटीज, जी इन्होंने उन्हें बहुत कमज़ोर कर दिया है। अजी, पिछले साल ही उन्हें दिल का सख्त दौरा पड़ा था। तब से वह बहुत सावधान रहते हैं।···जी···जी···नहीं, वैसे आप चाहें तो उनसे भी पूछ देखिए···मगर वह बहन साहिबा की तरफ़ ही इशारा करेंगे, आपको मिलने के लिए ! जी—हाँ—हाँ-हाँ···वह सब ठीक है मगर बहन साहिबा ने जब से सारा काम-काज सम्भाला है—सब कुछ बदल गया है।—जी हाँ···जी ?···अब बात यह है···मेडिकल कॉलिज की राजेन्द्र उद्योग समूह की बीस सीटें हैं ! जी ! जी ! और विक्रम इंडस्ट्रीज की, इंजीनियरिंग कॉलिज में पच्चीस सीटें हैं ! जी—जी, कॉलिज व्यवस्थापकों पर अब वह बंधन नहीं रहा कि सीटें प्रतिष्ठान में काम करने वाले मजदूरों को ही दी जाएँ ! वह तो विक्रम साहब ने एक सिलसिला चलाया था—जी हाँ···बस, इतना ही। मगर रूपाली बहन के हाथों में काम-काज की डोर आते ही उन्होंने वह सब बन्द कर दिया।

जी—अब सारी सीटें वह बेच देती हैं ! आपकी रक़म खर्च करने की इच्छा हो तो कहिए !···जी ! जी ! (हँसकर) अरे साहब कुछ सोच समझ कर बोलिए ! आजकल एक सीट का क्या रेट है, जानते हैं ? अजी लाख की बात पुरानी हो गयी, फिलहाल डेढ़ लाख है । यह तो नगद सौदा है । रकम की गठरी लिये कई लाइन में लगे हैं···जी—मज़ाक़ नहीं···साहब हाँ···आप कोशिश कर देखिए···विक्रमजी सुबह-सुबह ज़रा सैर करने जाते हैं, जी—वैसे आने ही वाले हैं लौटकर···! जी हाँ दस बजे के आस-पास फ़ोन कीजिए । जी···बहनजी, अजी साहब वह क्यों प्लाइट का इन्तज़ार करेंगी ! उनके लिए कम्पनी ने खास हवाई जहाज खरीदा है । जी हाँ···अब देखिए न आना-जाना इतना बढ़ गया है । क्या बताएँ, बहुत फैल गया है कारोबार···कुछ न पूछिए···(हँसते हैं) जी हाँ ! जरूर कह दूँगा । (रिसीवर नीचे रख देते हैं । बाहर से विक्रम का प्रवेश ।)

विक्रम : दयालजी ! यह सब कैसी व्यवस्था है ? कारखानों का सारा अनुशासन ही गड़बड़ा गया है । सामने से मालिक जा रहे हैं तो भी उन्हें देखकर प्रणाम करने का साधारण सा शिष्टाचार भी मजदूर लोग भूल गये हैं ।

दयाल : विक्रमजी, क्या बात है ?

विक्रम : अपने कारखाने का एक चक्कर लगाने मैं यूँ ही निकल गया था, तो वहाँ का एक भी मज़दूर मेरी तरफ़ आँख तक उठाकर देखने के लिए तैयार नहीं था ।

दयाल : अब आपके समय के सभी मज़दूर भी बदल गये हैं विक्रमजी ! अपनी बीमारी की वजह से, आप पिछले साल डेढ़ साल से कारखानों की तरफ या उनके दफ्तरों में गये ही कहाँ है; सो फिर ये नये कर्मचारी, नये मज़दूर आपको पहचानेंगे कैसे ?

विक्रम : मज़दूरों की बात छोड़िए, मगर वहाँ के अधिकारी लोग—ये वर्क्स मैनेजर, कर्माशियल मैनेजर, जनरल मैनेजर एक भी चेहरा मुझे जाना-पहचाना नहीं लगा ।

दयाल : रूपाली बिटिया ने जब से सारा काम-काज सम्भाला है तब से उन्होंने आपके वक़्त के सभी अफसरानों को भी बदल दिया है । जी हाँ, सारा स्टाफ़···

विक्रम : सारा स्टाफ ही नहीं दयालजी, सारा इन्तज़ाम भी गड़बड़ा दिया है । सारा कायदा ही बदल दिया है, उसने तहस-नहस कर दिया है सारा अनुशासन । मैं स्वयं अठारह घंटे काम में जुटा रहता था दयालजी—अठारह घंटे ! इसीलिए सारे कर्मचारी भी उतनी ही तत्परता के साथ मेरे

कंधे से कंधा मिलाकर काम पर लगे रहते थे। अब तो मैंने···वहाँ देखा, बीड़ियाँ धोकने, गप्पे मारने और घड़ी के काँटों की तरफ नजर रखे हुए बस बैठे-बैठे मक्खियाँ मारने के सिवा कुछ काम ही नहीं हो रहा है।

दयाल : आपके समय की बात ही कुछ और थी विक्रमजी। अब तो वक्त ही बहुत बदल गया है। और फिर जब वक्त बदला है तो इनसान भी बदल गये है। आजकल कारखानों में उत्पादन के बदले राजनीतिक खेल बहुत बढ गया है। कहते हैं, कल ही कारखाने के वर्क्स मैनेजर और चार मजदूरों में झड़प हो गयी, जमकर कहा-सुनी हुई। मामला बहन साहिबा के सामने पेश हुआ तब उन्होंने गुस्ताखी करने वाले चारों मजदूरों को काम पर से फ़ौरन निकाल दिया। यह तो बहुत ज्यादती है।

विक्रम : उन्हें काम पर से निकाल दिया? यह तो बहुत ज्यादती है। इतनी-सी बात के लिए हम मजदूरों के पेट पर लात नहीं मारते। इस छोटी-मोटी कहा सुनी पर तो विचार किया जाता है···

दयाल : मुझे लगता है विक्रमजी, आप बीच में न ही पड़ें तो अच्छा। बहन साहिबा ने काफ़ी विचार करने के बाद ही यह फ़ैसला किया है।

विक्रम : इसे क्या विचार करना कहते हैं? जो मन में आया, बस कर दिया, तुम्हारी बहन साहिबा ने। यह मामला अगर आग पकड़ ले तो राजेन्द्र ट्रैक्टर्स में हड़ताल हो जाएगी! यह जानती हैं वह? मैंने तो आज ही सुना है कि मजदूरों ने हड़ताल पर जाने की तैयारी भी शुरू कर दी है।

दयाल : बहन साहिबा ने उन्हें इसीलिए जान-बूझ कर बर्खास्त कर दिया है कि कम्पनी में हड़ताल हो।

विक्रम : अच्छा, इसलिए कि कम्पनी में स्ट्राइक हो? यह सब आप क्या कह रहे हैं दयालजी?

दयाल : मैं सोलह आने सच कह रहा हूँ। दो हजार ट्रैक्टर्स कम्पनी में पड़े हुए हैं। मंदी की वजह से बाजार में उनकी मांग ही नहीं है।

विक्रम : अचानक यह मंदी कैसे? बाजार तो···

दयाल : रानी बिटिया बहन साहिबा कहती हैं मंदी है···बस। इसलिए चार-छह महीनों के लिए हड़ताल की वजह से कारखाने में ताला बंदी हो जाएगी, तो मैनेजमेंट को फायदा ही होगा।

विक्रम : मगर यह भूत किसके भेजे से निकला है? यह कैसा सड़ा हुआ नीतिशास्त्र है? यह कैसी विकारों से भरी हुई व्यापार की रीति है? हम लोगों का उद्देश्य उत्पादन बढाना है या बरबादी करना? क्या आप में से किसी ने उसे नहीं समझाया कि राजेन्द्र उद्योग समूह की परम्परा क्या रही है?

दयाल : किसकी हिम्मत है ? मैंने एक बार कोशिश कर देखी थी, तो उन्होंने मुझे ही झिड़की पिला दी और फटकारकर कहा, "मुझे मेरे दादा और डैडी का नीतिशास्त्र समझाने की कोई जरूरत नहीं। वह साधु-संत-वैरागी की श्रेणी में आते हैं और मैं केवल व्यवहार जानती हूँ।"

विक्रम : मगर यह कैसा व्यवहार है ? यह दुराचार है—बदमाशी है—सिर्फ़ बदमाशी ! यह बात उसे कड़े शब्दों में बतलानी ही होगी—लेन-देन कोई लुच्चापन नहीं होता, शुभ-लाभ होता है।

दयाल : आप इस झंझट में न ही पड़ें तो ठीक रहेगा। और अगर पड़ने ही वाले हों, तो कम से कम उन्हें मेरा नाम तो मत ही बताइए कि मैंने उनकी सारी तजवीज आपको बता दी है।

विक्रम : ठीक है, मैं समझ गया।

(बालाराम ऊपर से जाई को निचली मंज़िल पर उतार लाता है। जाई को देखकर लगता है कि वह होश-हवास खो चुकी है। पागलों की तरह उसकी भाव-भंगिमा और चेष्टाएँ चलती रहती हैं।)

जाई : (शून्यवत् मुद्रा में गाते हुए)

नहीं चाहिए मुझे महल ये
नहीं जगत् के नाते
क्यों प्राण नहीं उड़ जाते
सो जाऊँ गाते गाते···

नहीं चाहिए चांद,
बैरन ये चांदनी रातें
बन गयी आँख के कांटे,
क्यों प्राण नहीं उड़ जाते
सो जाऊँ गाते गाते···

मंदिर ही सूना मेरा
घर बार था जिस पर सारा
टूटा वह जीवन तारा
चिर रात नयन घिर आते
क्यों प्राण नहीं उड़ जाते
सो जाऊँ गाते गाते···
क्यों प्राण नहीं उड़ जाते ?

विक्रम : (व्याकुल होकर) नहीं जाई नहीं, मत गाओ यह गाना। इसके शब्दों से मन वीरान हो जाता है। दिल तड़प उठता है—जान चीख पड़ती है। यह गीत नहीं है—मेरे सीने में चुभता खंजर है—मेरे कलेजे को चीरने वाला

नश्तर ! मैंने तुमसे कई बार कहा है कि यह गीत मत गाया करो। बारह साल बीत गये उस अभागी घड़ी को, जब एक सिरफिरे की तरह मैंने तुम्हारे शील पर संदेह किया था । उस समय मारे मत्सर के मेरा सिर फिर गया था। उस सनकीपन में मैं तुम्हारी जान लेने पर उतारू हो गया था—सब मेरा अपराध था। मैंने कितनी बार अपनी गलती कबूल की है—तुमसे माफी मांगी है।...अपने कसूर के लिए मैंने जो सजा भोगी है क्या अब तक वह पूरी नहीं हुई ? अरे, मैंने कितनी बार तुमसे क्षमा याचना की है। मैंने तो बलराज के...चरणों पर माथा तक टेक दिया था—फिर भी वह मुझे जो छोड़ गया तो फिर लौटा ही नहीं। तुम उस आघात से पागल-सी हो गयी हो। मुझ से बोलती तक नहीं—बस हँस देती हो कभी-कभी, धिक्कार भरी हँसी—कभी रो देती हो, फूट-फूटकर। नहीं तो बस गाती हो, यह गाना—जो मेरे कलेजे को छलनी बना देता है।

"नहीं चाहिए मुझे महल ये,
नहीं जगत् के नाते
क्यों प्राण नहीं उड़ जाते
सो जाऊँ गाते गाते...

नहीं जाई नहीं...इस तरह सोने की बात मत करो। बालाराम, इनको नाश्ता करवा दिया ?

बालाराम : जी !

विक्रम : ठीक है, फिर तुम जाओ। (बालाराम भीतर चला जाता है।) दयाल जी, आप जानते हैं न, आज बलराज आने वाला है !

दयाल : क्या वह सच ही आ रहे हैं ? अक्सर तो वह आने के लिए कहते भर हैं मगर आने को टाल जाते हैं।

विक्रम : नहीं, आज वह आये बगैर नहीं रहेगा। अगर वह आज भी नहीं आया तो फिर उसके लिए रुके रहने का अब मुझमें धीरज नहीं है। मैं अब रूपाली और उदय की शादी तय होने की घोषणा किये बगैर नहीं रह सकता। मेरी बस अब एक ही तमन्ना बाकी है कि अपनी बेटी रूपाली की शादी तो जी भरकर देख लूं ! न जाने मेरे प्राण पखेरूओं को कब बुलावा आ जाए।

दयाल : मगर इसके लिए उदय जी की रज़ामंदी तो होगी ही ?

विक्रम : उदय की सम्मति का सवाल ही नहीं उठता। वह बलराज की तरह ज़िद्दी नहीं है। वह बहुत समझदार है, विवेकशील है। उसने मुझसे बस इतना ही कहा, "एक रस्म के तौर पर आप काकाजी से पूछ ज़रूर लीजिए। अगर उन्होंने मना ही कर दिया तो उनसे विवाद मत कीजिए। आप

अपना लग्न-मुहूर्त तय कर लीजिए।"

दयाल : फिर तो बलराज आज आयेंगे जरूर।

विक्रम : आप ऐसा निष्कर्ष क्यों निकाल रहे हैं ? बलराज क्या इस विवाह का विरोध करने के लिए…

दयाल : नहीं विक्रमजी—मेरे कहने का यह मतलब नहीं है। गलत मत समझिए। मैं तो सिर्फ़ यूँ ही कह रहा था।

विक्रम : हाथ कंगन को आरसी क्या। अगर वह अपनी जिद दिखाता है तो मैं भी कम जिद्दी नहीं हूँ। मैं अपनी जिद पर अड़ा रहूँगा। बस अपनी तरफ़ से कुछ कसर नहीं रखना चाहिए, इसलिए उससे पूछना अपना फर्ज…अच्छा हो, आप उसके स्वागत के लिए बाहर ही रहिए। अगर आज आपकी बेटी अच्छी होती—तो…सच…रोओ मत रानी। तुम सच ही अच्छी हो जाओगी।—यक़ीनन तंदुरुस्त हो जाओगी। मैं भी वायदा करता हूँ फिर कभी ऐसा नहीं होगा—अब मैं भी अच्छा बन जाऊँगा, पिछली सारी गलतियाँ सुधार कर हम…(रूपाली प्रवेश करती है।)

रूपाली : हाय डैडी !…और यह क्या है ? ममी को नीचे कौन ले आया ? बालाराम ! बालाराम !!

विक्रम : अब तुम हो-हल्ला मचा कर सारे घर को मत थरथराओ। चौबीसों घंटे ऊपरी मंजिल पर कैद रखने के लिए क्या यह कोई क़ैदी है ? जरा घुमाने-फिराने के लिए बालाराम उसे नीचे ले आया जिससे उसकी थोड़ी चहलकदमी ही हो जाए, तो इसमें उसने कोई बहुत बड़ा अपराध भी नहीं किया है।

रूपाली : मगर डैडी, मैं भी जब ममी को चौथी मंजिल पर रखती हूँ तो इसमें कोई अपराध तो नहीं कर रही हूँ। आप तो जानते ही हैं कि ममी की हालत कैसी है। ऐसी हालत में, बाहर के आने-जाने वालों के सामने, नौकर-चाकरों के बीच में उनको यहाँ लाना क्या सही है ? व्यर्थ की चर्चा मोल लेना…लोगों को जो चाहे सो बोलने का मौका देना…वैसे ही लोग न जाने क्या-क्या बकते हैं।

विक्रम : क्या बकते हैं ?

रूपाली : डैडी, उसे सुनकर आप नाहक अपनी मनोव्यथा बढ़ाने की क्यों सोच रहे हैं ?

विक्रम : मगर रूपाली, लोग क्या बोलते हैं, मैं भी तो सुनूं ?

रूपाली : सुनना ही है तो सुनिए। लोग कहते हैं, आप ही के कारण ममी की

यह दशा हुई है। आप उनकी जान लेने पर उतारू हो गये थे; उसी सदमे से यह ऐसी हो गयी हैं।

विक्रम : हे भगवान् !

रूपाली : आप इतने हैरान क्यों होते हैं। पहले शांत तो हो जाइए। लोगों का क्या है। बिना हड्डी की जबान उठाई, तलवे से मार दी। उनका क्या जाता है। मगर आप।···इसीलिए मैं आपसे कहना ही नहीं चाहती थी। मैं इसी वजह से ममी को चौथी मंज़िल पर रखती हूँ कि हम किस-किस की जबान बन्द करेंगे ? और फिर ऊपरी मंज़िल पर उनके लिए किस सुविधा की कमी रखी है मैंने ? उनकी सेवा-टहल के लिए दो-दो नर्सें हैं। बालाराम तो है ही। वह एक नन्ही बिटिया की तरह सम्भालता है ममी को। वहाँ उनका नहाना-धोना, खाना-पीना, दवा-पानी सब ठीक चल रहा है। हर रोज़ डॉक्टर आकर उन्हें देख जाते हैं···दिन में एक बार। इससे ज्यादा और आप क्या चाहते हैं, बोलिए मैं और क्या करूँ ? परन्तु आप व्यर्थ की चिंता मत किया कीजिए, यूँ चिढ़ा मत कीजिए, इस तरह संतप्त मत होइए, और न ही अपने दिमाग को फिजूल परेशान कीजिए। यह सब डॉक्टर भी आपसे कितनी बार कह चुका है। दो बार आपको दिल का ज़बर्दस्त दौरा पड़ चुका है, यह बात आप हमेशा क्यों भूल जाते हैं डैडी ?

विक्रम : यह सब ठीक है बेटी लेकिन···

रूपाली : डैडी, क्या आप नहीं जानते कि आपका मुझे कितना सहारा है ! फिर क्या आप यह चाहते हैं कि आपकी बेटी बेसहारा हो जाए ?

विक्रम : नहीं-नहीं बेटी, ऐसी बात नहीं है।

रूपाली : बालाराम ! ममी को ऊपर ले जाओ; और ध्यान रहे, मेरी इजाज़त के बगैर इन्हें फिर कभी नीचे मत लाना।

बालाराम : (आकर) जी ! (जाई को सम्भाल कर ले जाता है। इतने में ही बाहर से बलराज प्रवेश करता है।)

विक्रम : आओ बलराज ! आओ मेरे दोस्त ! (ज़ोर से बाहों में भर लेता है।) अरे यार, कितने दिनों बाद···नहीं सालों बाद, तुम्हें मेरी याद आयी।

बलराज : ऐसा एक दिन भी नहीं बीता जब मुझे तुम्हारी याद न आयी हो। फिर यह कैसे हो सकता है कि तुमसे मिलने की बात मेरी लालसा न बनी हो ?

विक्रम : फिर वह लालसा अधूरी क्यों रहने दी ? कौन सा रोड़ा आ गया था राह में ?

बलराज : अपने आप से ही पूछ देखो !

विक्रम : मेरा मन तो पश्चात्ताप के आँसुओं से कब का धुल चुका है—साफ़ हो

चुका है मगर तुम बीती को बिल्कुल बिसार नहीं पाए हो—तैयार भी नहीं हो मेरे दोस्त। मैंने तुम्हारे चरणों को आँसुओं से पखार कर तुमसे क्षमा-याचना की थी—उसे भी अब एक युग बीत गया है। मगर इन बारह सालों के बाद भी…

बलराज: नहीं मित्र, तुम्हारा अनुमान बिल्कुल ग़लत है। तुम्हारा मन साफ़ हो गया है इसीलिए तो मैं तुम्हारे स्नेह का भूखा हूँ। बीती बातों को तो मैं कब का भूल चुका हूँ। तुम्हें अपनी ग़लती समझ में आ गयी और बस यहीं हमारा झगड़ा भी मिट गया। संदेह की दवा धनवन्तरी के पास भी नहीं होती। संदेह हट जाने पर तुम्हें क्षमा-याचना करने की भी कोई आवश्यकता नहीं थी। बस दुख यही है कि तुम्हारे भ्रम ने बेचारी जाई को…

विक्रम: बलराज, मेरा कलेजा पहले ही पक चुका है, अब उस नासूर पर नमक मत छिड़को।

बलराज: फिर इस विषय को ही बदल दें तो ठीक रहेगा। हाउ इज़ बिजनेस। कैसा चल रहा है?

विक्रम: यहाँ तो तबियत ने भी साथ छोड़ दिया है इसलिए अब तो कामकाज से भी हाथ हटाता जा रहा हूँ। पिछले दो-ढाई बरसों बाद आज ज़रा कारखानों की तरफ़ पहली बार गया था। अरे हाँ रूपाली, तुमने राजेन्द्र ट्रैक्टर्स के चार कर्मचारियों को एकदम नौकरी से निकाल दिया है, यह ख़बर मेरे कानों में पड़ी है।

रूपाली: यह ख़बर सच है।

विक्रम: मंदी की वजह से कारख़ाने में दो हज़ार ट्रैक्टर रुके पड़े हैं।

रूपाली: हाँ! यह भी सच है।

विक्रम: हूँ! और इसलिए अब मैनेजमेंट चाहती है कि हड़ताल भी हो जाए तो अच्छा हो। किसी तरह मज़दूरों को हड़ताल पर जाने का बढ़ावा मिले, इसलिए इन चार कर्मचारियों को बिना वजह बर्ख़ास्त किया गया है।

रूपाली: यह सब आपसे किसने कहा?

विक्रम: किसी ने भी कहा हो। बस इतना बताओ कि यह सच है या नहीं?

रूपाली: यह सच है।

विक्रम: रूपाली, जानती हो, मेरे पापा और मेरी नैतिकता की कसौटी पर यह नीति निकम्मी है।

रूपाली: डैडी, आप इस मामले की तरफ़ बिल्कुल ध्यान मत दीजिए।

विक्रम: यह सम्भव नहीं है बेटी। जब तक मैं ज़िंदा हूँ तब तक तो ध्यान अवश्य ही दूँगा। मैं ऐसा कुछ भी नहीं होने दूँगा, जिससे घराने की आबरू ख़ाक

में मिल जाए—नाम बदनाम हो जाए मेरा—और पापा का···

रूपाली : दादाजी संत पुरुष थे और आप भी साधु महात्मा हैं डैडी। लेकिन ··

विक्रम : तुम संत-साधु नारी नहीं हो। तुम्हें बस एक ही बात मालूम है और वह है लेन-देन की। मतलबीपन का यह मेल···तुम्हारे दिमाग में किसने भर दिया है ? यह स्वार्थ से सना हुआ तत्व ज्ञान···

रूपाली : मेरे दिमाग में कोई क्यों भरेगा ? अब मैं कोई दूध पीती बच्ची नहीं हूँ डैडी कि कोई चाहे जो कहे और मैं मान जाऊँ। मैं अपने निर्णय स्वयं करने में समर्थ हूँ।

विक्रम : लेकिन तुम्हारे फैसले मैनेजिंग बोर्ड ने किस तरह मंजूर कर लिये ? क्या किसी ने भी तुम्हें यह नहीं समझाया कि हमारे घराने की यह व्यापारनीति नहीं है ? तुम्हारे इन अविचारी निर्णयों का क्या किसी ने विरोध तक नहीं किया ?

बलराज : विक्रम, विरोध कौन करेगा ? इस बोर्ड पर न तुम हो, न मैं हूँ। तुम्हारे मेरे समय के सभी डायरेक्टरों को रूपाली ने किसी न किसी तरह से निकाल दिया है। अब तो बिल्कुल ही नया मैनेजिंग बोर्ड है।

विक्रम : नया मैनेजिंग बोर्ड ? मगर मुझे इसकी कानों कान खबर तक नहीं लगने दी गयी, इसका संकेत तक नहीं।

बलराज : पिछले दो-ढाई सालों से तुम हृदय विकार के कारण बिस्तर पर पड़े थे। रूपाली ने तुम्हारे आसपास ऐसा कड़ा बंदोबस्त कर रखा था कि तुम तक बाहर की खबरें ला ही कौन सकता था ?

रूपाली : डॉक्टर ने कड़ी चेतावनी दी थी कि कारखानों की झंझटें, अड़चनें, और उलझनें सुनाकर डैडी की व्यर्थ ही व्याकुलता बढ़े ऐसी कोई बात की ही नहीं जाए।

बलराज : और तुमने उसके आदेश का पूरी तरह पालन किया, इसलिए बिना खबर लगे, बाहर ही बाहर नया मैनेजिंग बोर्ड बन गया। पुराने निष्ठावान सदस्य हटा दिये गये और उनकी जगह कौन लिये गये, जानते हो—विट्ठलभाई सूरतवाला, छगनलाल गुंडेचा और लारेन्स डिसिल्वा वगैरह।

विक्रम : माइगॉड ! ये सट्टेबाज, काले बाजार के सरताज, और तस्करी के सरदार; ये चोर—बदमाश—लफंगे···

रूपाली : डैडी, आपसे किसने कह दिया कि ये लोग चोर, बदमाश, और लफंगे हैं ?

विक्रम : बेटी मैंने ये बाल धूप में सफ़ेद नहीं किये हैं। और अब शेर और बकरी एक घाट पानी नहीं पीते रूपाली ! ऐसे शैतानों की संगत करना दुर्गत को ही न्यौता देना है। इसके सिवा और क्या होगा ? तुम्हारे दादाजी और

मैंने खून पसीना एक कर, केवल सच्चाई के बल पर यह उद्योग खड़ा किया है। हमारी यही अभिलाषा रही है कि अपने देश का भवितव्य निर्माण करने के पावन कार्य में हमारा भी योगदान होना ही चाहिए। यह हमारा संकल्प था। मगर तुमने अपने आसपास जमा किये हैं ये मतलबी हैवान, भीतर ही भीतर कुरेदने वाले कीड़ों की तरह ये घुन जो अपना फ़ायदा लूट कर तुम्हारे उद्योग समूह के साथ पूरी तरह से गद्दारी करने में भी कसर नहीं छोड़ेंगे। ये तुम्हारा दीवाला निकलवा देंगे।

रूपाली : देखिए डैडी—ये देश···ये गद्दारी करने वाले···दीवाला···सारी बड़ी-बड़ी बातें मत कीजिए। सारे देश की चिंता को अपनी चिंता बनाने के लिए मैं कोई देशभक्त बलिदानी नहीं हूँ। मैं केवल मैं हूँ। जिस समय जो बात मेरे लिए लाभदायी होगी, मैं उसे ही करूँगी। आपने सारी इंडस्ट्री की व्यवस्था मुझ को सौंप दी है न? बस तो अब मुझे, अपने सारे काम-काज अपने तरीके से करने दीजिए। आप किसी परेशानी का बोझ अपने सिर मत लीजिए। आप बिल्कुल आराम कीजिए। डैडी—मुझे अभी बहुत-बहुत सालों तक आपकी आवश्यकता है। अच्छा, तो मैं ऊपर जाऊँ, चलो उदय···(दोनों जाते हैं।)

विक्रम : बलराज, लक्षण कुछ नेक दिखाई नहीं दे रहे हैं। तुम चुप क्यों हो?

बलराज : चुप! (विचित्र हँसी के साथ) विक्रम सच कहूँ? तुम्हारे साथ बातें करते समय, एक तो मुझे वह बोलना चाहिए, जो तुम्हें प्रिय लगे भले ही वह झूठ क्यों न हो। दूसरे यह कि मैं सच बोलूँ, भले ही वह तुम्हें कितना भी अप्रिय क्यों न लगे। कहते है 'सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात, न ब्रूयात सत्यम् अप्रियम'। मेरे लिए यह सम्भव नहीं है। मैं झूठ बोल नहीं सकता, तुम कटु सुन नहीं सकते; इसलिए मित्र, सब से भली चुप···

विक्रम : जब से उद्योग छोड़कर किसान बने हो तब से तुम कुछ पहेलियों में बोलने लगे हो।

बलराज : इसमें कोई पहेली नहीं है। पहेलियाँ पैदा होती हैं उद्योग धंधों में। जिस प्रकार कारखानों के कलपुर्जे पेचीदा उसी तरह कारखाने चलाने वालों का उद्योग उससे भी अधिक पेचीदा, जटिल और उलझन में डालने वाला होता है; और किसानी उसकी तुलना में बहुत सीधी-सादी, बहुत शांत, बहुत निर्मल होती है—खेती सुख खेती।

विक्रम : अरे वाह फिर तो एक दिन तुम्हारे फार्म पर आना ही पड़ेगा।

बलराज : नेकी और पूछ-पूछ—जरूर आओ मेरे मित्र—बोलो कब आ रहे हो?

विक्रम : हाँ, आऊँगा जरूर। जरा फुरसत तो मिल जाए।

बलराज : यह फुरसत की शर्त किसलिए मेरे साथी ! फिर तो, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी ! क्या इन कारखानों के धुएँ में—कलपुर्जों की खड़खड़ाहट में, इन सीमेंटी अट्टालिकाओं के जंगल में, तुम्हारा मन मटरगश्ती कर रहा है ? या कि तुम यहाँ के मायाजाल में उलझ गये हो ? मित्र मेरे, इससे बाहर निकलो। इस अंधेरी गुफा से, जितना शीघ्र बाहर निकल सकते हो, निकल भागो। बाहर के खुले जगमगाते प्रकाश में तुम्हारा पतझर-सा मुरझाया हुआ मन फिर पल्लवित हो उठेगा; प्रफुल्लित हो जाएगा, जैसे जंगल में मंगल। मेरे फ़ार्म में बस एक दिन तो रहकर देखो। वहाँ तुम्हें सुबह मिल का कर्कश भोंपा नहीं, कोयल की मधुर तान नींद से जगाएगी। जब तुम आँखें खोलकर चारों ओर निहारोगे, तो तुम्हें कारखानों की चिमनी से उठने वाले धुएँ की घनघोर काली-काली, घुटन पैदा करने वाली घटाएँ नहीं दिखाई देंगी; बल्कि तुम्हें दिखेंगे पवन के झोंकों से लहलहाते हुए हरे-भरे खेत, मस्ती से झूमती-इठलाती हुई अमराई, तीनों दिशाओं में दूर-दूर तक फैली हुई पर्वत मालाएँ—अपनी कहीं नीली, कहीं काली घटाएँ बिखेरते हुए; और चौथी दिशा में दिखाई देगी प्रशान्त प्रवाहिनी, इन्द्रायणी तथा उसमें प्रतिबिंबित और ऊपर फैला हुआ नीला आकाश। गोबर-मिट्टी से लिपी-पुती मेरे घर की ज़मीन और आँगन केवल अपनी महक से, तुम्हारे इस संगमरमरी फ़र्श की गोद में बीती हुई बेजान ठंडी ज़िन्दगी में नयी उमंग की सुखद ऊब ला देगा—एक नयी जान फूंक देगा। तुम यहाँ की मुर्दादिली भी भूल जाओगे। जब तुम मेरे आँगन में नाचते हुए मोर को देखोगे, कि उसने अपने पंख ऐसे फैलाये हैं जैसे इन्द्रधनुष को आकाश से धरती पर ले आया हो, तब तुम यहाँ की स्वार्थी दुनिया का पल-पल में बदलने वाला रंग और दौलत के ताल पर ता-ता-थैया करने वाले यहाँ के लोगों को भी भूल जाओगे। तुम्हें वहाँ बहुत ही शांत वातावरण मिलेगा। उससे तुम्हारा शरीर विश्राम पाएगा, मन विचारों से शांत हो जाएगा, तुम्हारी सारी बीमारियाँ रफ़ूचक्कर हो जाएँगी। तुम्हें पूरी शान्ति मिलेगी। चलो, जाई को भी साथ ले चलो। मुझे विश्वास है, यदि वह अच्छी होगी तो बस वहीं हो सकेगी। अब जाई की हालत कैसी है ?

विक्रम : अभी तुमने आने पर देखा ही है। वैसे तो कहने को अच्छी है। मैं भी इन एक-दो दिनों से ही घूमने-फिरने लगा हूँ। आज ही फैक्ट्री की तरफ़ गया था। मन को कुछ पसन्द नहीं आया। मुझे लगता है, अब इस व्यापक उद्योग से सदा के लिए…

बलराज : निवृत्त हो जाना चाहिए। मैं भी तुम्हें यही सलाह देना चाहता था।

सच कहता हूँ मित्र, मेरी तरह तुम भी खेतिहर बनने के लिए भूमि ले लो—छोड़ो यह सारा कारोबार। जब तुम मेरी तरह अपने खेतों में पसेरा करोगे तब ही मैं तुम्हारी इस निवृत्ति को सच मानूँगा।

विक्रम : क्या सच ही अपने फ़ार्म पर इतना अच्छा लगता है?

बलराज : अरे बन्धु, तुम एक महीना मेरे साथ रहकर देखो और फिर अपना निर्णय लो। बस, फिर तुम्हारे हाँ कहने की देर है, बाकी सब व्यवस्था मुझ पर छोड़ दो। मैं तुम्हारे लिए एक रमणीय स्थान देखता हूँ। वहाँ एक सुन्दर-सा फार्म हाउस बनवा लिया जाएगा। मगर मैं जानता हूँ मित्र, तुम्हारे कदम इस जगह से बाहर नहीं निकलेंगे। थका ऊँट सराय से बाहर नहीं जाना चाहता।

विक्रम : हाँ तुम भी ठीक कहते हो! देखें—एक न एक दिन तो वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करना ही चाहिए।

बलराज : ग्रहण करना अगर एक विवशता हो तो उसमें तुम दुखी ही होगे। अपनी खुशी से वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करने में ही तुम्हें ज्यादा आनन्द मिलेगा। मजबूरी के सलाम से स्वयं किया प्रणाम अच्छा होता है।

विक्रम : तुम फिर पहेली की भाषा बोलने लगे। (दोनों हँस देते हैं।) खैर छोड़ो! बताओ तुम्हारी तबियत कैसी है?

बलराम : तुम्हें कैसी लगती है? हट्टी-कट्टी है या नहीं। बाल पक गये मगर दांत पक्के हैं। न रक्तचाप है न मधुमेह। बस पीड़ा है तो वह यही कि किसी रोग की पीड़ा नहीं है।

विक्रम : खुशकिस्मत हो यार! लकी! (गम्भीर होकर) बलराज, अब मुझे रुपाली की कुछ चिन्ता होने लगी है। अगर, तुमने जो नाम बताए, वे लोग रुपाली को घेरे हुए है तो उनके···

बलराज : मगर इन भूतों को तो उसी ने अपने सिर पर सवार किया है विक्रम। फिर भूतों का फेरा तो···

विक्रम : मगर अच्छों का साथ छोड़कर इन कपटियों की संगत···आखिर क्यों?

बलराज : विक्रम, यह प्रश्न मुझसे पूछने से क्या लाभ है? उसके पिता होकर भी क्या तुम उसके मन की थाह पा सके?

विक्रम : हाँ! जो तुम कहते हो सो ठीक है, मगर—वह ऐसी नहीं है दोस्त—फिर भी 'विनाशकाले विपरीतबुद्धि' वाली कहावत कहीं लागू न हो जाए। ···बलराज ऐसे समय. उसको सम्भालने वाला कोई साथी चाहिए—जो हमेशा उसका सम्बल रहे। ऐसा कोई विश्वासपात्र जिसे वह चाहती हो, मेरा मतलब है···उदय···

बलराज : यह फुरसत की शर्त किसलिए मेरे साथी ! फिर तो, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी ! क्या इन कारखानों के धुएँ में—कलपुर्जों की खड़खड़ाहट में, इन सीमेंटी अट्टालिकाओं के जंगल में, तुम्हारा मन मटरगश्ती कर रहा है ? या कि तुम यहाँ के मायाजाल में उलझ गये हो ? मित्र मेरे, इससे बाहर निकलो । इस अंधेरी गुफा से, जितना शीघ्र बाहर निकल सकते हो, निकल आओ । बाहर के खुले जगमगाते प्रकाश में तुम्हारा पतझर-सा मुरझाया हुआ मन फिर पल्लवित हो उठेगा; प्रफुल्लित हो जाएगा, जैसे जंगल में मंगल । मेरे फार्म में बस एक दिन तो रहकर देखो । वहाँ तुम्हें सुबह मिल का कर्कश भोंपा नहीं, कोयल की मधुर तान नींद से जगाएगी । जब तुम आँखें खोलकर चारों ओर निहारोगे, तो तुम्हें कारखानों की चिमनी से उठने वाले धुएँ की घनघोर काली-काली, घुटन पैदा करने वाली घटाएँ नहीं दिखाई देंगी; बल्कि तुम्हें दिखेंगे पवन के झोंकों से लहलहाते हुए हरे-भरे खेत, मस्ती से झूमती-इठलाती हुई अमराई, तीनों दिशाओं में दूर-दूर तक फैली हुई पर्वत मालाएँ—अपनी कहीं नीली, कहीं काली घटाएँ बिखेरते हुए; और चौथी दिशा में दिखाई देगी प्रशान्त प्रवाहिनी, इन्द्रायणी तथा उसमें प्रतिबिंबित और ऊपर फैला हुआ नीला आकाश । गोबर-मिट्टी से लिपी-पुती मेरे घर की जमीन और आँगन केवल अपनी महक से, तुम्हारे इस संगमरमरी फर्श की गोद में बीती हुई बेजान ठंडी जिन्दगी में नयी उमंग की सुखद ऊब ला देगा—एक नयी जान फूंक देगा । तुम यहाँ की मुर्दादिली भी भूल जाओगे । जब तुम मेरे आँगन में नाचते हुए मोर को देखोगे, कि उसने अपने पंख ऐसे फैलाये हैं जैसे इन्द्रधनुष को आकाश से धरती पर ले आया हो, तब तुम यहाँ की स्वार्थी दुनिया का पल-पल में बदलने वाला रंग और दौलत के ताल पर ता-ता-थैया करने वाले यहाँ के लोगों को भी भूल जाओगे । तुम्हें वहाँ बहुत ही शांत वातावरण मिलेगा । उससे तुम्हारा शरीर विश्राम पाएगा, मन विचारों से शांत हो जाएगा, तुम्हारी सारी बीमारियाँ रफूचक्कर हो जाएँगी । तुम्हें पूरी शान्ति मिलेगी । चलो, जाई को भी साथ ले चलो । मुझे विश्वास है, यदि वह अच्छी होगी तो बस वहीं हो सकेगी । अब जाई की हालत कैसी है ?

विक्रम : अभी तुमने आने पर देखा ही है । वैसे तो कहने को अच्छी है । मैं भी इन एक-दो दिनों से ही घूमने-फिरने लगा हूँ । आज ही फैक्ट्री की तरफ गया था । मन को कुछ पसन्द नहीं आया । मुझे लगता है, अब इस व्यापक उद्योग से सदा के लिए...

बलराज : निवृत्त हो जाना चाहिए । मैं भी तुम्हें यही सलाह देना चाहता था ।

सच कहता हूँ मित्र, मेरी तरह तुम भी खेतिहर बनने के लिए भूमि ले लो—छोड़ो यह सारा कारोबार। जब तुम मेरी तरह अपने खेतों में बसेरा करोगे तब ही मैं तुम्हारी इस निवृत्ति को सच मानूँगा।

विक्रम : क्या सच ही अपने फ़ार्म पर इतना अच्छा लगता है?

बलराज : अरे बन्धु, तुम एक महीना मेरे साथ रहकर देखो और फिर अपना निर्णय लो। बस, फिर तुम्हारे हाँ कहने की देर है, बाकी सब व्यवस्था मुझ पर छोड़ दो। मैं तुम्हारे लिए एक रमणीय स्थान देखता हूँ। वहाँ एक सुन्दर-सा फार्म हाउस बनवा लिया जाएगा। मगर मैं जानता हूँ मित्र, तुम्हारे कदम इस जगह से बाहर नहीं निकलेंगे। थका ऊँट सराय से बाहर नहीं जाना चाहता।

विक्रम : हाँ तुम भी ठीक कहते हो! देखें—एक न एक दिन तो वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करना ही चाहिए।

बलराज : ग्रहण करना अगर एक विवशता हो तो उसमें तुम दुखी ही होगे। अपनी खुशी से वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करने में ही तुम्हें ज्यादा आनन्द मिलेगा। मजबूरी के सलाम से स्वयं किया प्रणाम अच्छा होता है।

विक्रम : तुम फिर पहेली की भाषा बोलने लगे। (दोनों हँस देते हैं।) खैर छोड़ो! बताओ तुम्हारी तबियत कैसी है?

बलराम : तुम्हें कैसी लगती है? हट्टी-कट्टी है या नहीं। बाल पक गये मगर दांत पक्के हैं। न रक्तचाप है न मधुमेह। बस पीड़ा है तो वह यही कि किसी रोग की पीड़ा नहीं है।

विक्रम : खुशकिस्मत हो यार! लकी! (गम्भीर होकर) बलराज, अब मुझे रुपाली की कुछ चिन्ता होने लगी है। अगर, तुमने जो नाम बताए, वे लोग रुपाली को घेरे हुए हैं तो उनके…

बलराज : मगर इन भूतों को तो उसी ने अपने सिर पर सवार किया है विक्रम। फिर भूतों का फेरा तो…

विक्रम : मगर अच्छों का साथ छोड़कर इन कपटियों की संगत…आखिर क्यों?

बलराज : विक्रम, यह प्रश्न मुझसे पूछने से क्या लाभ है? उसके पिता होकर भी क्या तुम उसके मन की थाह पा सके?

विक्रम : हाँ! जो तुम कहते हो सो ठीक है, मगर—वह ऐसी नहीं है दोस्त—फिर भी 'विनाशकाले विपरीतबुद्धि' वाली कहावत कहीं लागू न हो जाए। …बलराज ऐसे समय, उसको सम्भालने वाला कोई साथी चाहिए—जो हमेशा उसका सम्बल रहे। ऐसा कोई विश्वासपात्र जिसे वह चाहती हो, मेरा मतलब है…उदय…

बलराज : अभी हमने उदय का विषय प्रारम्भ ही नहीं किया है। तुम केवल रूपाली के बारे में बात करो। अभी भी तुम उसके बारे में बहुत स्निग्धता से सोच रहे हो। हो सकता है इसमें तुम्हारा कोई दोष न हो। पिता का नाता ही ममता का साथी होता है। इसलिए मेरी तरह अलीन रहकर उसके बारे में सोचना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं। लेकिन एक जिगरी दोस्त के नाते तुम्हें बस इतना ही कहना चाहता हूँ कि उसके बारे में इतने असावधान न रहो। सारे अधिकार उसके द्वारा हथिया लिए जाएँ उससे पहले ही तुम अपनी और जाई की स्वतन्त्र व्यवस्था कर रखो।

विक्रम : बलराज, यह क्या कह रहे हो? अरे अपने पिता और अपने खुद की इतनी कमाई के रहते हुए भी मुझे अपनी खिचड़ी अलग पकाने की तजबीज़ कर रखने की जरूरत ही क्या है?

बलराज : ठीक है, फिर भी अपना हाथ जगन्नाथ का भात होता है। यह मत भूलो मित्र कि इस जीवन-यात्रा में, हर कदम पर हमारे पल्ले पड़ने वाला जग और जीवन हम चाहें वैसा सुखद, सुहाना नहीं होता और यात्रा के अन्त में हाथ फैलाकर मनचाही मौत भी इन्सान को नसीब नहीं होती। माँ-बाप, बहन-भाई, औलाद-दोस्त तब तक बहुत मधुर, बहुत प्यारे लगते हैं जब तक वे कसौटी पर नहीं कसे जाते। मगर जब दुनिया उलटती है तो बस एक नाता ही बचा रहता है—मैं—मैं और मैं। तुम्हारी रूपाली बस यही एक नाता पहचानती है···मैं···मेरे मतलब की माया।

विक्रम : बलराज, आज तुम बहुत कटु हो गये हो।

बलराज : सब आप ही की कृपा है।

विक्रम : थैंक्स ए लॉट! बहुत शुक्रिया! मैं चाहता हूँ अब हम प्रमुख विषय पर आ जाएँ। शुरू किया जाए?

बलराज : प्रमुख विषय का तो पहले ही अन्त हो चुका है।

विक्रम : तुम फिर पहेली पर उतर आये।

बलराज : यह पहेली नहीं। मैं सीधी-सच्ची बात कह रहा हूँ। यदि उदय ने रूपाली से विवाह करने का निश्चय कर लिया हो, तो वह स्वतन्त्र है निर्णय करने के लिए। लेकिन इस आत्मघात को मैं अपनी सहमति नहीं दूँगा—बिल्कुल नहीं, कभी नहीं।

विक्रम : तो तुम समझते हो कि रूपाली से शादी करना उदय के लिए आत्मघाती होगा?

बलराज : अपने हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने के समान। मेरा यह विश्वास है—इसे दुर्भाग्य ही कहूँगा।

विक्रम : तुमने रूपाली को समझ क्या रखा है?

बलराज : तो आखिर का वह कड़वा सत्य भी सुना देता हूँ । तुम्हारी बेटी रूपाली बहुत बुद्धिमान है, बहुत ही कुशल है, लेकिन वह उतनी ही स्वार्थी है—षड्यंत्रकारी है और चरित्रहीन है ।

विक्रम : (चिढ़कर) बलराज !

बलराज : वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कैसा भी अपराध करने में नहीं हिचकिचाएगी । इस उद्योग समूह की प्रतिष्ठा को तो वह मिट्टी में मिला ही देगी, लेकिन तुम्हें और उदय को भी वह…

विक्रम : (आग-बबूला होकर) गेट आउट—यहाँ से मुँह काला करो । मेरे घर से फ़ौरन निकल जाओ ।

बलराज : मैं यह मानकर ही आया था कि हमारी यह भेंट अन्तिम होगी—गुड बॉय ।

रूपाली : (ऊपर से फौरन उतरते हुए) डैडी—डैडी—मुझे आप पर गर्व है । आइ एम प्राउड ऑफ़ यू ! अब आप शांत हो जाइए । चाचाजी के शब्दों पर बिल्कुल ध्यान मत दीजिए, अपना मन दुखी मत होने दीजिए । मैं इसके बाद अब आप जैसा कहेंगे वैसा ही व्यवहार करूँगी । अब कारखानों के सारे निर्णय आपकी इच्छा के अनुसार ही होंगे ।

(मंच पर अन्धकार छा जाता है ।)

दूसरा प्रवेश

(कुछ महीने बीत चुके हैं । वही दीवानख़ाना । एक दिन, सध्या का समय । दयाल और बालाराम बातें कर रहे हैं ।)

बालाराम : कुछ पता चला साहब का ?

दयाल : क्या कहा ?

बालाराम : मैंने कहा, साहब का कुछ ठौर-ठिकाना किसी ने कुछ जाना ? दो दिनों से साहब घर से लापता हैं । घर छोड़कर जो गये…

दयाल : मुसीबत यह है कि उस समय मैं घर में नहीं था । लेकिन बालाराम इस तरह नाराज होकर अचानक घर छोड़ने वाली क्या बात हुई थी ?

बालाराम : अब क्या बताऊँ ! यह मजदूरों की हड़ताल हनुमान जी की दुम बनी जा रही है। महीनों बीत गये। इसलिए साहब ने बहन साहिबा से कुछ कहा। बस कहा-सुनी हो गयी। बात बढ़ गयी तो साहब ने झल्लाकर कुछ बातें कहीं, तो बहन साहिबा ने भी झिड़ककर बहुत कुछ कह दिया जवाब में। बस उसी झुंझलाहट में, साहब ने अपनी गाड़ी निकाली··· और वह भर्राती हुई जो बाहर गयी, तो न गाड़ी लौटी न साहब ! उनका पता भी नहीं है। मुझ गरीब की क्या हिम्मत जो बहन साहिबा से कुछ पूछूँ। अब अगर आप ही उनसे कुछ पूछ देखें तो शायद ···

दयाल : बालाराम क्या तुम समझते हो कि मैंने उन्हें कुछ कहा नहीं ? अरे जानते हो उन्होंने क्या जवाब दिया ? वह बोली, "इस तरह मुँह फुलाकर रूठने-रूमने के लिए डैडी कोई नन्हे-मुन्ने बच्चे तो हैं नहीं। वह जैसे गये हैं वैसे ही वापिस भी आ जाएँगे। अगर आपको उनकी चिन्ता बहुत सता रही है तो खुद जाइए और ढूढ लाइए। उनके साथ आँख मिचौनी का खेल खेलने के लिए मेरे पास समय नहीं है।" अब बोलो बालाराम, कौन क्या कहेगा इस पर ?

(बालाराम, सिर पर हाथ मारकर जाने लगता है तो दयाल उसे वापिस बुलाते हैं।)

दयाल : अरे बालाराम, ये लो अपनी महीने की तनख्वाह।

बालाराम : क्या बात है साहब ? अब तनखा बाँटने की भी आपकी ही बारी है ?

दयाल : क्या करें, भाई ! राजेन्द्र ट्रैक्टर्स की हड़ताल शुरू हुई और यह मसला सजीदा होते-होते बिगड़ता ही गया है। इस समूह के सभी कारखाने हड़ताल के चक्कर मे फस गये हैं। सारे कारखानो पर ताला बदी हुए आज छह महीने बीत गये हैं। मजदूरो के नेता अपनी मतलबी अकड़ मे डटे हुए हैं और हमारी रानी बिटिया अपने अहकार की अकड़ मे। परसों राजेन्द्र ट्रैक्टर्स के फ़ाटक पर एक मजदूर का खून हो गया, तब से तो मामला और भी हद के पार पहुँच चुका है। कल यूनियन का कोई कार्यकर्ता अपने बंगले के मुनीम से बातें कर रहा था, ऐसी उड़ती खबर रानी बिटिया के कानों मे पहुँची। किसी ने यूँ ही कुछ कह दिया होगा, बस उसे फौरन नोटिस जारी कर दिया।···हाँ, अपने पैसे बराबर गिन लिये ?

बालाराम : उसमे गिनने की क्या बात है साहब ?

दयाल : पैसे लेते-देते समय यह उसूल जरूर याद रखो—ले गिन, दे गिन। अच्छा तो लो ये रकम भी सम्भालो।

बालाराम : अब और रकम काहे की साहब ?
दयाल : यह एक महीने की तनख्वाह और !
बालाराम : बोनस ?
दयाल : नहीं।
बालाराम : एडवान्स ?
दयाल : नहीं ! यह है, नोटिस की पेशगी तनख्वाह। आज से बहन स ने तुम्हें काम पर से निकाल दिया है।
बालाराम : काम से निकाल दिया है ? वजह ?
दयाल : जाई को चौथी मंजिल से नीचे न लाने की बहन साहिबा ने ताकीद की थी तुम्हें। फिर भी तुम आज सुबह उसे नीचे क्यों ले ये ?
बालाराम : साहब, उन्हें चौथी मंजिल पर बन्द रखना कैद-सा लगत उनकी जान घुटने लगती है। वह बहुत ही व्याकुल हो जाती हैं आड़ा-टेढ़ा बनाने लगती है।
दयाल : तो क्या तुम उन्हें चांदनी में नहीं घुमाते ?
बालाराम : घुमाता तो हूँ। दिन में दो बार उन्हें छत पर ले जाता हूँ। कल वह मेरे हाथ से निकल भागी और पागलपन के दौरे में उ नीचे छलांग लगाने ही जा रही थी कि मैंने उन्हें थाम लिया समय मैं लपक कर पहुँचा तो वह बच गयी। इसलिए अब उन्हें छ ले जाने की हिम्मत कैसे करूं ? छत के दरवाजे पर मैंने ताला लग है। इसलिए आज सुबह उन्हें चहलकदमी कराने के लिए यहाँ ले था। इसमें साहब, गलती क्या है ?
दयाल : क्या गलती है ? तुम्हारी सबसे बड़ी ग़लती यह है कि तुमने साहिबा का हुक्म नहीं माना। अगर तुमने पहले ही उन्हें यह बता होता कि जाई मालकिन छत पर से छलांग लगाने जा रही। उन्होंने मुनासिब फैसला किया होता। तुमने अपने दिमाग का इस क्यों किया ? क्यों तुम जाई को नीचे ले आये ? मगर यह सजा इ नहीं है कि तुम जाई बिटिया को नीचे क्यों लाये बल्कि इसलिए तुमने बहन साहिबा की सख्त ताक़ीद को तोड़ने की हिम्मत की जैसा किया वैसा भुगतो ! जो कानून बनाते हैं, उन्हें किसी दू हाथों कानून तोड़ना कभी बर्दाश्त नहीं होता, समझे बाला
बालाराम : मैंने कौन सा कानून तोड़ा है साहब ? मैंने तो जाई मालकि जान…
दयाल : यही तो तुमने मनमानी की, गलत काम किया ! अरे, जिन

हुकूमत उसका हुक्म सलामत; तभी चाकरी होती है। क्यों और किस-लिए"'ऐसे सवाल तो कभी पूछने ही नही चाहिए। हाकिम की अगाड़ी और घोड़े की पिछाड़ी से बचना चाहिए। अपना दिमाग़ काम में मत लाओ, दिल को पत्थर बनाओ, पसीजने मत दो ! अरे तुम तो घर के नौकर हो, मुझे देखो, मैं तो जाई *बिटिया का बाप* हूँ। कलेजा मुँह को आता है मगर सब कुछ इन्ही आँखों से देखता रहता हूँ। मैं सब समझता हूँ ! क्या मेरे दिल पर साँप नही लोटते होंगे ? मगर मैं मन मसोस कर खामोश रहता हूँ।

बालाराम : मैं तो ऐसों की पन्हैयों से पूजा करूँ, शोर मचा मचाकर कानों के पर्दे फाड़ दूँ, ऐसा हाथ चलाऊँ कि सारी बत्तीसी हाथ में आ जाए।

दयाल : *किसकी पूजा ? किसकी बत्तीसी ?*

बालाराम : जो मेरे कलेजे के टुकडे को ऐसे दुख देगा, उसकी।

दयाल : बालाराम, चाकर की जुबानी ऐसी बदगुमानी ? यह बदतमीजी कभी बर्दाश्त नही की जा सकती। समझे ! यह लो तुम्हारी नोटिस की तनख्वाह। मगर बहन साहिबा के कहे मुताबिक मैं इसमें से कुछ रुपयों की कटौती कर रहा हूँ। जाई बिटिया को चहलक़दमी कराते समय वह तुम्हारे हाथ से निकल भागी थी इसलिए जुर्माने के ये दस रुपये। बहन साहिबा के हुक्म के बगैर तुमने छत के दरवाजे को ताला लगा दिया इसलिए ये दस रुपये। और अब मेरे सामने खड़े होकर तुमने यह जो मुँहजोरी की है उसका जुर्माना भी दस रुपये।

बालाराम : मगर साहब"'

दयाल : और अब अगर मगर करने की सजा जिससे तुम आगे मेरे सामने मुँहजोरी न करो, इसके लिए ये दस रुपये जमानत"'

बालाराम : अजी दयाल साहब...

दयाल : मैंने ताकीद की थी फिर भी तुम बोले इसलिए जमानत के दस रुपये जब्त।

बालाराम : ऐसी की तैसी"'

दयाल : अरे, मेरे सामने ऐसी की तैसी करता है ? और जुर्माना दस रुपये। इस तरह सत्तर रुपये काट कर बची हुई अपनी रकम और नोटिस की तनख्वाह लो और चलते बनो"'

(बालाराम जेब से शराब की बोतल निकालता है और पीने लगता है।)

दयाल : यह क्या बेहूदगी है।

बालाराम : बेहूदगी नही साहब ! इसे तो 'फेनी' कहते हैं। अपना ड्राइवर

डिसूज़ा आज सुबह ही गोवा से लौटा है। वह खास मेरे लिए ले आया था। यह बोतल मैं ड्यूटी खत्म होने के बाद खोलने वाला था। मगर जब आपने हमेशा के लिए ही ड्यूटी का खातमा कर दिया फिर अब यहीं बैठकर मैंने इसका जशन मनाना शुरू कर दिया। भाड़ में गयी नौकरी···
(पीता है।)

दयाल : बालाराम, मेरी आँखों के सामने···

बालाराम : अब यहाँ किसके बाप का डर है? अब तो हम आपके नौकर नहीं हैं, जो जी चाहेगा करेंगे।

दयाल : अरे अरे! इस घर के दीवानखाने में तू खुलेआम ठर्रा पी रहा है। कुछ शरम-हया, लाजलज्जा है या सब घोलकर पी गया?

बालाराम : दयाल साहब—जब से मालिक घर छोड़कर चले गये घर की सारी आबरू भी उनके साथ ही कूच कर गयी और मुझे अब तो शरम हया घोलकर पीने की जरूरत ही नहीं रही। कहते हैं जैसी शराब वैसी लज्जत और जैसा अफ़सर वैसी इज्जत। अजी मेरे ठर्रे की भली चलाई दयाल साहब, पहले रूपाली बहन साहिबा का तुर्रा सम्भालिए। जानते हैं बाहर लोग उनके बारे में क्या-क्या बोलते हैं? अगर नहीं जानते तो अपनी नयी मालकिन के बारे में अपने ही मजदूरों से पूछ देखिए।

दयाल : उठा अपने पैसे और निकल बाहर।

बालाराम : अरे वह भी रख लीजिए। एक भी बाल आपकी खोपड़ी पर टिक नहीं पाया है मगर आपकी चाँद के पीछे लम्बी चोटियाँ निकल आयी हैं। जरा अपनी हजामत करवा लीजिए और सलून वाले को यह सारी रक़म दे दीजिए।

दयाल : बालाराम, गंजे आदमी को हजामत करवाने के लिए इतनी रक़म नहीं चाहिए।

बालाराम : मगर ऊपर से बखशीश भी देनी पड़ेगी न साहब!

दयाल : गंजा बाल कटवाये और ऊपर से बखशीश क्यों दे?

बालाराम : जिस तरह भगवान् गंजे को नाखून नहीं देता उसी तरह चाँद की मुंड़ाई करते समय बहुत सम्भालकर उस्तरा चलाना पड़ता है साहब—इसलिए बखशीश। वैसे भी आप अमीर हैं मैं गरीब। अमीर का बैंक में खाता होता है भरा हुआ—उठाई चेक-बुक, चला दी क़लम। फ़िकर की बात नहीं रहती। मगर यही खाता गंजे के सिर की तरह रहा तो फिर पैसा निकालते समय बहुत सोचना पड़ता है साहब। उसी तरह बेचारे खलवाट को भी एक-एक बाल कटते समय बहुत खलता है। इसलिए इनाम देना ही अच्छा। मगर आप तो पक्के मक्खीचूस हैं। उसे इनाम क्या देंगे? आप

तो भागते-भूत की भी लंगोटी उतार लेंगे।

दयाल : बहुत मुँहजोर हो गया है, मगरूर कहीं का। चल निकल जा यहाँ से।

बालाराम : मेहनत की रोटी खाने वाला कभी मगरूर नहीं होता साहब। मालिक की चापलूसी कर अपनी रोटी पर घी चुपड़ने वाला, जूठन के मालपुए खाकर मुटियाने वाला लतखोर और जी हुजूरी करने वाला हो…

दयाल : बस अब अक्ल के दीये मत जला, अपनी गठरी उठा और आज ही इसी वक्त मकान से निकल जा। (बालाराम जाने लगता है।) बालाराम, ये ले. ले जा—अपनी पूरी तनख्वाह। तेरे सत्तर रुपये काटकर मुझे क्या करना है। मैं तो यूँ ही मजाक कर रहा था।

बालाराम : मैं तो आपकी टहल बजाने वाला ही ठहरा, जरा आप से ठिठोली कर रहा था। मेहनत की कमाई बेकार नहीं गंवाई जाती साहब। मेरे पैसे जाते कहाँ? घरेलू नौकर यूनियन की तरफ़ से नोटिस भेजकर मैं पाई-पाई वसूल कर लेता। अपना हर काम कानूनी होता है साहब।

दयाल : मुझे कानून की धमकी देता है? तेरी यह मजाल? तेरी हिमाकत यहाँ तक पहुँच गयी?

बालाराम : क्यों साहब? कुछ अधिक ऊँची हो गयी क्या? तो फिर उससे नीची उड़ान भी है साहब—जरा गैरकानूनी ही सही। आप चौबीसों घन्टे इस महल में लुक-छिप कर तो बैठेंगे नहीं। कब तक भीतर खैर मनाएँगे? किसी न किसी दिन तो रास्ते पर आएँगे ही। फिर निपटा लेंगे अपना हिसाब-किताब। साहब, आपने चाकर के मेहनती हाथ तो देखे हैं मगर दिन में तारे दिखाने वाला घूँसा नहीं देखा। इन बाहुदण्डों का घमण्ड नहीं करता साहब मगर यह माँसपेशी की मछली, जब उचकेगी न…तो उसकी उछलकूद देखकर आप सत्तर ही क्या सात सौ भी ठनाठन गिन देंगे चुपचाप।

दयाल : अरे काका, बस बहुत हो गया। जबरदस्त का ठेंगा सिर पर—वाला अपना कानून अपने ही पास रख। मेरा तो तुझे हाथ जोड़कर राम-राम है। अब यहाँ से अपना डेरा समेट और रास्ता नाप। जा बाबा…जा…

बालाराम : तो बस अब गुस्सा थूक दीजिए साहब! मैं कुछ अनाप-शनाप बक गया हूँ—तो क्षमा कर दीजिए। आखिर हम ठहरे नौकर। आप भी नौकर ही हैं। हम रूखी-सूखी के—आप हलवा पूरी के। हम खून-पसीना एक करते हैं। आप चमड़ी में चरबी भरते हैं, हम मेहनत मजदूरी करते हैं, आप जी हुजूरी करते हैं। अच्छा, प्रणाम। (जाता है।)

दयाल : जब मकान ही उलट-पुलट हो जाए तो मियालें भी आड़ी-तिरछी होंगी

ही। फिर नौकर नमकहराम क्यों न हो? पर उसका भी कहना ठीक ही है। अगर दूध की प्याली में छिपकली गिर जाए तो सारे दूध में जहर घुलेगा ही। इस घर के भी यही हाल है। चार पीढ़ियों की चाकरी की है मैंने इस घर में। मिट्टी से मेहनत का महल खड़ा करने वाले उद्योगपति शिवशंकर राजेन्द्र, कामुक होते हुए भी इस उद्योग के कारखानों को जी-जान से सम्भालने वाले प्रियरंजन, अपने पिता के कदम पर कदम रखकर एक सिफ़र से उद्योग समूह की सल्तनत खड़े करने वाले विक्रम राजेन्द्र—कहाँ तो वे शूरों के सरताज—और कहाँ यह शैतान की खाला, रूपाली। बहादुरों के बीज से यह जहरीली बेल कैसे फूट पड़ी? एक पान अगर सड़ जाए तो सारे पान सड़ा देता है, एक दागी आम सारे पाल को बेकार कर देता है उसी तरह इस रूपाली ने सारे उद्योग समूह को निकम्मा कर दिया है, उसे जड़ से झकझोर दिया है। एक नौकर दिन-दहाड़े इस महल के दीवानखाने में शराब पीकर इतना बोलने की बेअदबी करता है और मैं मजबूर होकर उसे देखता रहता हूँ इससे बढ़कर बदकिस्मती और क्या हो सकती है? न जाने इन बूढ़ी आँखों को अभी और क्या देखना बाकी है?

(बलराज और ड्राइवर विक्रम को सम्भाले भीतर लाते हैं। विक्रम के सिर पर पट्टी बंधी हुई है और कपड़ों पर खून के दाग है।)

बलराज : जरा सम्भालकर···सावधानी से।

दयाल : यह क्या हो गया? क्या हो गया इन्हें?

बलराज : कुछ नहीं। इन्हें थोड़ा विश्राम करने दीजिए, आराम से बैठने दीजिए। विक्रम, गरमागरम कॉफी पियोगे? तुम्हें कुछ अच्छा लगेगा! (वह चुप रहता है।) कोई बात नहीं। कुछ देर आराम करो। (दयाल से) दो दिन पहले विक्रम मेरे फ़ार्म पर आये थे। बहुत ही विचित्र मनस्थिति थी उनकी।

दयाल : हाँ, वह जो हड़ताल चल रही है न, उस बारे में रूपाली से कुछ बहस हो गयी थी।

बलराज : वह सब उन्होंने मुझे बता दिया है। रूपाली के व्यवहार से उन्हें बहुत क्लेश पहुँचा है।

दयाल : आपके इतने खिलाफ रहते हुए भी विक्रम जी ने रूपाली की शादी उदय बाबू के साथ कर दी—सिर्फ अपनी जिद पूरी करने के लिए। आप दोनों ने आपसी ताल्लुकात भी तोड़ दिये थे, फिर भी विक्रमजी आपके फ़ार्म पर खुद गये, यह अचरज की बात है···

बलराज : दयालजी, इसमें अचरज किस बात का? ऐसी मनोदशा में वह मेरे सिवा और कहाँ दौड़ा जाएगा? यहीं जाई को विक्षिप्त हालत में इस

संसार मे मेरे सिवा उसका अन्तरंग साथी और कौन है ?

दयाल : तो फिर जब ये आये ही थे तो इन्हें महीना पन्द्रह दिन अपने पास फ़ार्म पर ही रख लेते ! मन को कुछ शांति तो मिली होती।

बलराज : इनका मन तो सारा यहाँ लगा हुआ था। जैसे-तैसे यह मुश्किल से एक दिन के लिए वहाँ टिके और फिर लगे बेचैनी दिखाने। फिर उस मज़दूर के ख़ून के बाद कुछ मज़दूरों ने राजेन्द्र ट्रैक्टर्स के फ़ाटक के सामने आमरण अनशन प्रारम्भ किया है, यह खबर जब इन्होंने समाचार-पत्रों में पढ़ी, तो बस यहाँ लौटने का हठ करने लगे। जब इन्हें यहाँ ले आया तो कहने लगे, "पहले अपनी मोटर राजेन्द्र ट्रैक्टर्स के गेट पर ले चलो। मुझे अनशन कर रहे हड़तालियों से मिलना है।" खैर, मैं वहाँ ले गया। उन मज़दूरों के साथ यह घण्टे-आध घण्टे तक बहुत अच्छी तरह बातें करते रहे। फिर अचानक वहाँ कुछ पचास-साठ लोगों ने हमला कर दिया, हुल्लड़बाज़ी शुरू कर दी। पथराव, लाठीमारी—बस वहाँ दंगा ही शुरू हो गया। आखिर पुलिस को गोलियाँ चलानी पड़ीं, लोगों ने लाठियाँ चलाईं। लाठी का एक वार गलती से इनके सिर पर पड़ा।

विक्रम : नही बलराज यह लाठी का वार मुझ पर गलती से नही जानबूझ कर किया गया था। वे लोग मेरा सिर फोड़ देना चाहते थे। वैसे मुझे अब अपनी जान की कोई परवाह नही रही, मगर दुःख इस बात का है बल-राज कि जिन मज़दूरों के भले के लिए मेरे पापा और मैंने जी जान लड़ा दी थी, उन्ही मज़दूरों में से एक मज़दूर मेरी जान लेने पर उतारू हो गया···

बलराज : क्यों निरर्थक ही तुम मज़दूरों पर संशय कर रहे हो ? ऐसे उतावले-पन और संशयपूर्ण स्वभाव के कारण ही तुम हमेशा अपने लिए स्वयं संकट को न्योता देते हो। उस समय बिना कारण ही तुमने मुझ पर संदेह किया, मुझे दुखी किया। उसी संशय के उन्माद में तुमने जाई के प्राणों पर झपटने का उतावलापन दिखाया और उसे जीवन-भर के लिए गम्भीर चोट पहुँचाई। यह जो कुछ किया है क्या अब तक काफ़ी नही हुआ ?

विक्रम : उस बारे में कुछ न कहो बलराज, वह बात अलग थी—यह अलग है।

बलराज : अलग कुछ नही है ! इतनी मारपीट में वही सब मज़दूर क्या तुम्हें बचाने के लिए अपनी छाती पर वार नही झेल रहे थे ? वे तुम्हें घेर कर खड़े नही हो गये थे ? क्या तुम्हारी जान उन्होंने नहीं बचाई ?

विक्रम : मगर वह लाठी का वार···

बलराज : इतने भीड़-भड़क्के में सम्भव है किसी और ने वह हमला किया हो।

उस हुल्लड़ का फ़ायदा उठाकर तुम्हारा बुरा चाहने वाले किसी शत्रु ने तुमसे अपना बदला लेने के लिए यह वार किया हो, यह भी तो सम्भव है।

विक्रम : मेरी मौत से किसको फ़ायदा पहुँचने वाला है? क्योंकि यह हड़ताल अगर खत्म हो सकती है, तो वह बस मेरी वजह से हो···

बलराज : हो सकता है तुम इसी कारण किसी के मार्ग के कंटक बन गये हो और वह तुम्हे सदा के लिए मिटा देना चाहता हो। परसों रूपाली से हुई खटपट के समय तुमने उसे अपनी आखिरी वसीयत के बारे में कहा था। याद है? सम्भव है···

बलराज : बलराज! डॉन्ट टॉक रॉट! ऐसी गन्दी बातें मत कहो। पहले से ही तुम्हारा मन उसके बारे में दूषित है। रूपाली मेरी इकलौती बेटी है बलराज! वह सचमुच ही अपने बाप की जान लेने···

बलराज : मैं उस पर ऐसा कोई अभियोग नही लगा रहा हूँ। मैं तो तुम्हें केवल बार-बार चेतावनी दे रहा हूँ, उस पर इतना अधिक भरोसा न करो। वह बेटी से अब बहन साहिबा बन गयी है। साथ ही, बिना किसी कारण मज़दूरों पर भी व्यर्थ ही संदेह मत करो। यदि तुम्हारे मन में उनके लिए ऐसा मैल फैल जाएगा तो फिर इस हड़ताल की हालत बिगड़ती ही जाएगी। अगर यह समाप्त हो सकती है तो बस तुम्हारे ही प्रयत्नो से—बस तुम ही यह झंझट मिटा सकते हो और इसे मिटाना बहुत आवश्यक है। मेरे मित्र, फिर एक बार कड़वी सचाई सुन सकोगे? तुम जितना सचाई की राह पर चलने वाले हो, बुद्धिमान हो, सुयोग्य हो, कार्य करने की क्षमता रखते हो, लेकिन उतने ही संयम खो देने वाले हो, उतावले हो और कुछ मामलों में मन के कमज़ोर भी हो। अपनी इन कमज़ोरियों को समय रहते निकाल फेंको और दृढ़ता के साथ सारे सूत्र अपने हाथ में ले लो। तभी तुम्हारे पिता द्वारा निर्माण किया गया यह उद्योग मन्दिर अपने शिखर तक पहुँच सकेगा। नहीं तो स्वार्थ की घूस सारे मन्दिर को ध्वस्त किये बग़ैर नही रहेगी। मैं तुम्हें सचेत करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

(बाहर से रूपाली और उदय प्रवेश करते हैं।)

रूपाली : बाहर कैसे घने बादल घिर आये हैं और कैसी साँय-साँय हवा चल रही है। मैं तो बिल्कुल ठिठुर-सी गयी हूँ। लेकिन···(विक्रम और बलराज को देखती है।) हाय डैडी, हाय अंकल! (हँसकर) मैं जानती थी, हमारे डैडी रूठकर आखिर जाएँगे कहाँ? क्यों अंकल, आपके फ़ार्म में पहुँचे थे न?

बलराज : हाँ।

रूपाली : तो फिर उन्हें यहाँ महीना-दो महीने रख लेना था। यहाँ की खुली हवा में उनका दिमाग भी शान्त हो गया होता। यहाँ तो वह छोटी-छोटी बातों पर नाहक ही चिड़चिड़ा कर मेरा दिमाग खराब करते हैं।

विक्रम : छोटी-छोटी बातों पर और नाहक···अरे पापा के और मेरे शासन काल में जो कभी नहीं हुआ वह अब हो रहा है। ऐसी अजीब घटना हुई! मेरे कारखाने के फाटक पर मेरे मजदूर की दिन दहाड़े हत्या!

रूपाली : तो उसमें अजीब क्या है? जब हड़ताल चल रही है तो उस समय ऐसी इक्का-दुक्का मामूली सी वारदातें हो ही जाया करती हैं।

विक्रम : यह मामूली सी वारदात है? अरी! मेरे कारखाने के दरवाजे पर मेरा एक मजदूर मौत के मुँह में झोंक दिया जाता है···

रूपाली : डैडी! इस दुनिया में रोज लाखों-करोड़ों इनसान मौत के मुँह में जाते हैं।

विक्रम : मुझे उन लाखों-करोड़ों से कोई सरोकार नहीं है। वह मेरा मजदूर था···मेरा···

रूपाली : होगा!

विक्रम : उसकी तो जान ली गयी है। मगर इस हड़ताल की वजह से मेरे हजारों मजदूर और उनके परिवार दाने-दाने के लिए मुहताज होकर रोज ज़िंदा मौत की मजबूरियाँ भोग रहे हैं।

रूपाली : मैंने उनसे हड़ताल करने के लिए नहीं कहा था। वे अपनी करनी का फल भुगत रहे हैं।

विक्रम : अपनी करनी का नहीं तुम्हारी करनी का अंजाम भोग रहे हैं वे लोग रूपाली! राजेन्द्र ट्रैक्टर्स के गेट पर अनशन कर रहे मजदूरों से मिलकर, उनसे खुद सारी बातें समझकर मैं यहाँ आया हूँ।

रूपाली : इसका मुझे पता चल गया है।

विक्रम : यह चोट भी मुझे वहीं लगी है।

रूपाली : यह भी मैं जानती हूँ!

विक्रम : मेरी बीमारी के समय तुमने जब से कामकाज की बागडोर अपने हाथों में सम्भाली है तब से तुम्हारी क्या-क्या गतिविधियाँ रही हैं इन सबका मुझे पूरा पता चल चुका है।

रूपाली : कौन-सी गतिविधियाँ?

विक्रम : तुमने चार मजदूरों के पेट पर लात मारी केवल यही इस हड़ताल की वजह नहीं है। यह तो सिर्फ़ आग भड़काने वाली अंतिम चिनगारी थी। तुमने तो इससे पहले ही अपनी सुरंगें बिछा रखी थीं।

रूपाली : कैसी सुरंगें?

विक्रम : अपने उद्योग समूह के मजदूरों के कल्याण के लिए मैंने बड़ी कोशिशों से जो-जो योजनाएँ शुरू की थीं उन्हें तुमने एक के बाद एक बंद कर दिया है। कारखानों में सिर्फ़ पचास पैसों में मज़दूरों को दोपहर का भोजन मिल सके, इसके लिए मैंने जो कैण्टीनें खुलवाईं थी उन्हें तुमने बंद करवा दिया। उचित दरों पर मज़दूरों को किराने का सामान, अनाज, कपड़ा आदि मिल सके इसके लिए मैंने जो सहकारी भंडार शुरू किये थे तुमने वे सब बंद करवा दिये। निःशुल्क पुस्तकालय, व्यायामशाला, सांस्कृतिक केन्द्र ये सब तो तुमने बंद कर ही दिये, लेकिन उन मज़दूरों के बच्चों को मुफ्त तालीम और उनके परिवारों को मुफ्त इलाज मिल सके, इसके लिए शुरू की गयी पाठशालाएँ और औषधालय भी तुमने बंद करा दिये।

रूपाली : हाँ! मैंने ही सब बंद करवा दिये! हमारा उद्योग समूह न तो कोई लंगर है और न ही कोई धर्मशाला। यहाँ न कहीं मुफ्त में मरियल गऊएँ पाली जाती हैं और न ही मुफ्त की सहूलियतें दी जाती हैं। यह व्यापार के लिए खड़ा किया गया एक महान् उद्योग-समूह है। यहाँ तो जैसा माल वैसा मोल, और जैसा काम वैसा दाम'''यही सौदा होता है और मैं इसी सौदे को जानती हूँ! यह मज़दूरों की भलाई, उनका कल्याण, उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान, आपकी इन सारी आलतू-फालतू स्कीमों से मज़दूर सिर पर सवार हो जाते हैं। मज़दूरों की इस तरह की ठकुरसुहाती मैं कभी नहीं चलने दूँगी। पैरों की पन्हई पैरों में ही पहनी जाती है और मैं यही करूँगी!

विक्रम : यह'''मैं'''मैं रटने वाली तुम हो कौन? यह मैं का इतना अहम् तुम में कब से आ गया? अपनी खुदी को इस तरह औरों पर लादने का तुम्हें अधिकार ही क्या है? इस उद्योग समूह को खड़ा करने के लिए तुमने ऐसा किया ही क्या है? अरे, तुमने इसके लिए क्या अपने पसीने की एक बूंद भी बहाई है? शून्य से अपना सपना साकार करने का श्रेय मेरे पिता को है। उन्होंने यह उद्योग खड़ा किया—मैंने इसे अपने खून पसीने से सींचकर वृद्धि में पल्लवित किया—यह फला-फूला है मेरी और मेरे मजदूरों की मेहनत के बल पर! तू है पराई बाँबी पर कुंडली मारकर बैठने वाली एक नागिन! तू हम को ही फन दिखाकर डसने चली है? अरी छोकरी, ऐसे गलत धोखे में मत रहना। जब तक मेरी जान में जान है तब तक मैं तुझे झूठे गुमान में बिल्कुल नहीं रहने दूँगा।

रूपाली : डैडी! इस तरह व्यर्थ ही उन्मत्त मत होइए। आप कुछ कर ही नहीं सकते हैं।

विक्रम : यह मत भूल—शेर भले ही बूढ़ा हो जाए, उसकी देह थककर चूर-चूर

हो जाए मगर शेर हमेशा शेर ही रहता है। जानना चाहती हो, मैं क्या कर सकता हूँ और क्या करना चाहता हूँ? तो सुन लो! मैंने अपने वसीयतनामे मे तुम्हें जो अधिकार दिये थे वे अब मैं स्वयं ही सम्भालूँगा। मैं इस समूचे उद्योग समूह का एक सार्वजनिक ट्रस्ट बना रहा हूँ। किसी को भी इस दौलत की एक दमडी तक अपने निजी काम के लिए इस्तेमाल करने की इजाजत नही होगी। यह लोगों की अमानत है। इसका उपयोग केवल लोक-कल्याण के लिए किया जा सकेगा। अपने मतलब के लिए और अपनी अभिलाषाएँ पूरी करने के लिए कोई भी इस उद्योग समूह का उपयोग नही कर सकेगा, तुम अब भ्रम में बिल्कुल मत रहना बेटी!

रूपाली : डैडी…मैं कभी भी किसी भी भ्रम में नहीं रही हूँ और आप भी किसी भ्रम में मत रहिए। कुछ लोगों की प्रवृत्ति जन्म से ही आत्मघाती होती है। मजदूरों की भलाई के दिवालियापन भरे सपनों की वजह से अपना स्वयं ही सर्वनाश करने की दादाजी की प्रवृत्ति रही थी और आपका भी झुकाव उसी ओर है। मैंने यह बहुत पहले ही पहचान लिया था। तब से ही मैंने बड़ी सावधानी के साथ एक-एक सूत्र अपने हाथ में ले लिया। आपके भरोसे के जितने भी लोग मैनेजिंग बोर्ड के सदस्य थे उन्हें मैंने एक-एक कर खूबी के साथ हटाया। उनके स्थानों पर अपने आदमी बैठाए। आपने मजदूरों को जो सुख सुविधाएँ प्रदान की थी, उन्हें मैंने धीरे-धीरे समाप्त कर दिया। उन्हें बार-बार भड़काया जिससे वे हड़ताल पर जाने के लिए विवश हो जाएँ। यह सब मैंने व्यर्थ ही नहीं किया है। इस हड़ताल के कारण और मेरी चालबाजियों की वजह से हमारे उद्योग समूह के शेयर का भाव बाजार मे गिरता गया। झटपट बाजार में उनकी बिक्री शुरू हो गयी और मैंने उन्हें कॉर्नर कर लिया, फ़ौरन खरीद लिया। आज इस उद्योग समूह के सत्तर फीसदी शेयर मेरे कब्जे में हैं डैडी। आप कितना भी चाहें फिर भी अब आप मेरा कुछ नही बिगाड़ सकते। यह उद्योग समूह अब मेरा है, केवल मेरा है। (टेलीफ़ोन बजता है। रूपाली फोन उठाती है।) हलो! हाय! वी. के. डार्लिंग…अब सोकर उठे हो? यू लेजी बगर! लो यह क्या बात हुई। तुम्हारे साथ क्या मैं भी रात भर नहीं जागी थी?…मगर सुबह सात बजे से ही अपने काम पर हाज़िर। अरे यार, अपना जिगर बुलंद है! इसे कहते हैं दमखम! रात की बात मत करो यार, मजा आ गया! मैंने अपने पति देवता से कहा, "अभी तो आप लल्ला हैं। मेरा वी. के. तो पट्ठा है असली पट्ठा! शेर का पट्ठा!" यार उसे भी किसी दिन सेक्स का सार तो समझाओ! आज तो नहीं! नहीं यार बिल्कुल नही! आज अपना मूड खराब है। अच्छा, फिर कभी फ़ोन करना।

ओ ! किस भी ऑन द फोन डार्लिंग ! (फ़ोन पर चूमने की आवाज) बाय !! (फोन रख देती है।)

विक्रम : (अत्यन्त व्याकुलता से) बलराज—बलराज, तुम्हारी भविष्यवाणी सच निकली। अरे ! यह सब सुनते समय मेरे कान जवाब क्यों नहीं दे गये ? मेरे कलेजे के टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गये ? उदय तुम यह सब कैसे सहन कर रहे हो ? अरे इस कुलटा कलंकिनी का कण्ठ मर्दन कर अपनी मर्दानिगी क्यों नहीं दिखाते ?

रूपाली : डैडी ! क्या आप उदय को मेरे खिलाफ़ भड़काने की कोशिश कर रहे हैं ? अगर यह बात है तो आपको इसमें भी कोई सफलता नहीं मिलेगी। कोई लाभ नहीं होगा। नीति के बारे में मेरी कल्पनाएँ सीता और सावित्री के युग की पुरानी परम्परावादी नहीं रही हैं। इस बारे में मेरे और उदय के बीच पूरा अण्डरस्टेंडिंग है, मेल-मिलाप है। हम दोनों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लेने का निश्चय किया है। क्यों उदय, मैं ठीक कह रही हूँ न ?

विक्रम : बदचलन औरत, खुद अपने खाविंद से ही समझौता...

रूपाली : डैडी, हम लोगों के निजी मामले में आप क्यों दखल देते हैं ? दाल-भात में मूसलचन्द ! मैंने उदय से जो स्पष्ट रूप में कहा था वही अब आपसे भी कहना पड़ रहा है। मैं क्या करूँ और कैसे रहूँ यह मेरी मर्जी का सवाल है। मुझे कोई किसी तरह की सीख देने की कोशिश न करे। मुझे पाठ पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। अब तक आप भी समझ गये होंगे डैडी, इस घर में अब आप और मैं एक-दूसरे से मेलजोल नहीं रख सकते। अब हमारी पटरी नहीं जमेगी डैडी, इसलिए मैंने विश्रामपुर के वृद्धाश्रम में आपको रखने का निश्चय किया है।

विक्रम : अरे वाह ! मेरी बिल्ली मुझ ही से म्याऊँ ! सिंह बूढ़ा हो गया तो यह चुहिया उसे धर्मादा कोठे में रखेगी ? भूल जा यह सब। मुझे उसकी जरूरत भी नहीं है। जिस घर में तुझ जैसी निकम्मी, नीच, कृतघ्न, कुलटा रहती है उस घर का अब पानी पीना भी जहर का घूंट लेने के समान है। घुन लगे हुए इस घर में, इसके ऐश्वर्य में, भले ही तू नरक के कीड़े के समान बिलबिलाती रहे, मुझे इससे कोई सरोकार नहीं है।

मूलतः तो जन्म ही है
एक कलुषित घृणित घटना,
जन्म मानव का स्वयं ही पाप का साकार सपना।
पाप के अभिशाप से अवकाश की जन-शून्यता वह
भाग्यशाली रही होगी स्तब्धता प्राचीन निश्चित।

किन्तु टल सकता न हो यदि जन्म लेना
पक्षियों-पशु-जंतुओं का जन्म श्रेयस,
किन्तु यह 'अच्छे', 'बुरे' का ज्ञान, निर्णय
व्यथित कर देता वृथा मानव हृदय को
इसलिए यह व्यर्थ ढोंगी, भीरु जीवन मानवों का
चाहिए बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं, न भूलकर भी।

कितना सीधा-सादा-सा है नर से मादा का यह नाता
पर नाते-रिश्तों का उसमें घोला जाता इन्द्रजाल जब
बढ़ जाती नातों की उलझन—माता-पिता, बहन-भाई या बेटी-बेटा
शब्द-शब्द नाते रिश्तों का
एड़ लगाता हो सवार गर्दन पर निज अधिकारों के बल
और गले का फंदा कस मांगें वसूल करता अपनी बस!
इन्सानों की इस दुनिया में झूठे हैं सब नाते-रिश्ते
केवल सच हैं मानव के संग जन्मे, उसके खून समाये
स्वार्थ, द्वेष, विश्वासघात, नीचता, क्रूरता, कपट, अधमता
और तृप्ति से वात्सल्य की लेती जन्म—नाम है उसका बस कृतघ्नता।

सिंह-व्याघ्र के शक्तिशाली शावकों ने
क्या कभी चीरा कहीं है कंठ माँ का
क्या किसी नागिन विषैली के पूत ने भी
फैलाकर फन अपना डंसा होगा पिता नाग को भी?
फिर आया कैसे और कहाँ से यह उग्र हलाहल
संतानों में मानवों की?
इन्सानों की ये औलादें अपने बूढ़े माता-पिता पर
कहर ढाना सीखी किससे?
गहरे वात्सल्य की संतृप्ति से ही जन्म लेती जो
नाम है उसका बस कृतघ्नता…
(कृतघ्नता…कृतघ्नता…कृतघ्नता—कहते हुए वह जाने लगता है।)

रूपाली : डैडी, कहाँ जा रहे हैं आप?

विक्रम : इस नरक से बाहर—इस दोज़ख से दूर—इस दुनिया में कहीं भी—दूर कहीं दूर। उदय, जाओ—जाई को नीचे ले आओ। उसे फौरन ले आओ उदय। मगर ठहरो, इस घर को छोड़ने से पहले, मेरे कलेजे में एक धड़कन-सी पैदा हो गयी है—एक सवाल कुरेद रहा है। उसे मैं पहले तुमसे पूछना चाहता हूँ। सच-सच जवाब देना। सच बताओगे न? इस चरित्र-

हीनता की सारी लम्पट, बेलगाम जिन्दगी के बारे में तुम्हें पूरी तरह जानकारी होनी चाहिए। झूठ मत कहना ! फिर उसका यह अनाचार तुम क्यों चुपचाप सहन कर रहे हो ? अपनी खुली आँखों से तुम इसका सारा व्यभिचार कैसे देख रहे हो ? आखिर क्यों ? क्या इस के लिए तुम्हारा प्यार इतना अन्धा हो गया है ? इतना दीवाना ! (उदय गर्दन नीचे झुका लेता है।) बलराज, ठीक इसी तरह गर्दन झुकाकर मेरे पापा खड़े हुए थे उस समय। जब मैंने उनसे पूछा, "पापा, बस एक ही बात बताइए। आपने मम्मी का व्यभिचार अपनी खुली आँखों क्यों देखा ?" तो इसी तरह पापा ने गर्दन झुका ली थी। बलराज ! माई गॉड ! एक चक्र पूर्ण हो गया ! अरे यह चक्र अचानक पूर्ण हो गया। (उदय गर्दन नीचे किये चला जाता है।) अपनी भरी जवानी में मैंने अपनी माँ के व्यभिचार को धिक्कारा था और सारे ऐश्वर्य को लात मारकर मैं केवल पहने कपड़ों से ललित महल से बाहर निकला था। अपनी चालीसी में अपने खुद की मेहनत के बल पर मैंने इस उद्योग समूह का यह गगनभेदी वृक्ष पनपाया था और अपने इस बुढ़ापे में क्या पाया मैंने ? कहाँ आ पहुँचा हूँ मैं ? मेरी समृद्धि ने ही मेरी उँगलियाँ पकड़कर ला छोड़ा है मुझे लानत भरी हालात की गहराइयों में, देखने अपनी ही बेटी के कुकर्म ! सच बलराज, मैं शापित हूँ ! बद्दुआओं की मार है मुझ पर। अरे मेरा यह जन्म ही शापित है, झूठ है। इस दुनिया के सारे नाते-रिश्ते···बिल्कुल झूठ···

बलराज : मेरे मित्र। क्या मेरा प्रेम भी···

विक्रम : नही यार, उस प्यार की ललकार ही इस शाप की मार में मेरी मददगार है। बस, इसी से मैं शापमुक्त हो सकूँगा। लेकिन मुझ बदनसीब को यह बात पहले ही समझ में क्यों नही आयी ? क्यों मुझे इसका पहले ही पता नही चला ?

बलराज : अब तो चल गया न ? सुबह का भूला सांझ को भी लौट आये तो भूला नही कहाता। चलो मेरे साथ मेरे फ़ार्म पर चलो, जाई को भी साथ ले लो। अब जीवन की शाम वहीं आराम से बितायेंगे, हम सब मिलकर।

विक्रम : नही बलराज, अब यह होना संभव नहीं है। हो सकता है कि अब कभी भी न हो पाए। मैं अश्वत्थामा की तरह अपने शाप को अपने माथे पर लाद कर चलूंगा। मैं किसी के भी घर पर इसकी आंच नहीं आने देना चाहता। अब मैं न किसी का आसरा ले सकता हूँ और न किसी का अपनापन। मुझे अब किसी का आधार नही चाहिए, मैं पीपल के पेड़ की तरह अपने-आप ही फूट निकलूंगा, फिर जड़ें पकड़ लूंगा अपनी और छा जाऊँगा आसमान में गगनभेदी बन···

(भीतर से भयानक चीख सुनाई देती है।)

बलराज : यह किसकी चीख सुनाई दी ?

(उदय ऊपर से दौड़ता हुआ आता है।)

उदय : ममी ने चौथी मंजिल की खिड़की से छलांग लगा दी।

बलराज : हे भगवान् !

विक्रम : उदय क्या कर रहे हो ? मेरी जाई···जाई···

बलराज : विक्रम तुम यहीं ठहरो, बाहर मत जाओ··

विक्रम : मगर जाई वहाँ···

बलराज : मैं हूँ। मैं सब देखता हूँ। उदय, तुम यहाँ विक्रम के पास ठहरो।
उसे यहाँ से बाहर मत आने देना। (बलराज बाहर भागता है।)

विक्रम : उदय, हटो उदय।

उदय : डैडी प्लीज।

विक्रम : उदय रास्ता छोड़ो, मुझे जाई के पास जाने दो। ओ! मेरी माँ ऽऽ
(वह छाती पर हाथ दबाकर गैलरी की तरफ कटघरे की ओर लड़खड़ाते
हुए जाता है।) जाई—जाई मुझे छोड़कर मत जाओ जाई। मेरे एक
कुसूर की इतनी जबर्दस्त सजा मत दो जाई!

उदय : डैडी···सम्भलिए डैडी!

विक्रम : (जोर से बिलख कर विलाप करते हुए) जाई ऽ ऽ ऽ जाई ऽ ऽ आह!
उदय-उदय···जाई कहाँ है? बलराज, मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा
रहा है! उदय···बलराज ऽऽऽ···

(बलराज प्रवेश करता है।)

बलराज : (गला भर आता है) विक्रम···

विक्रम : मत बोलो बलराज! उन भयानक शब्दों का उच्चारण मत करो।
मैं समझ गया। जाई ने मुझे माफ नहीं किया है। बलराज, वह हमेशा
के लिए मुझसे रूठ कर चली गयी! (छाती की वेदना दबाते हुए गिरता
है। बलराज उसे हाथों पर सम्भाल लेता है।) बलराज मेरे दोस्त! कम
से कम तुम तो जाई की तरह, मेरी तरफ पीठ मत फेरना!···मुझे क्षमा
कर दो! मित्र, कह दो तुमने मुझे क्षमा कर दिया···बलराज।

बलराय : अपने मित्र से क्षमा माँगने की क्या आवश्यकता है विक्रम! क्या
कभी दोस्त को ही दोस्त से माफी माँगनी चाहिए ?

विक्रम : बलराज!—मेरे दोस्त—मेरे साथी···(उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।
पार्श्व में आसमान पर बिजली की जोरदार चमक और फिर गड़गड़ाहट।
तूफान अपना विनाशकारी रूप दिखा रहा है। तब धीरे-धीरे यवनिका
पतन)

(—तीसरा अंक समाप्त—)

• • •

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वारा प्रकाशित अन्य

नाट्य-कृतियां

सत्ता के आर-पार	विष्णु प्रभाकर	7.50
प्रथम प्रतिश्रुति (लघु-नाट्य-रूपान्तर)	सान्त्वना निगम	3.00
वर्द्धमान रूपायन	कुन्था जैन	10.00
महाप्राण बाहुबली (काव्य नाटक)	कुन्था जैन	7.50
तीन नाटक (द्वि. सं.)	सुरेन्द्र वर्मा	15.00
दो पुरुष	ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	3.00
रंगपांचालिक और दो नाटक	पु. शि. रेगे	3.00
शुतुरमुर्ग (पुर., तृ. सं.)	ज्ञानदेवी अग्निहोत्री { लाइब्रेरी सं 8.00 पेपर बैक 6.00	
प्रतिनिधि संकलन : अन्तरभारती एकांकी (द्वि. सं.)	सं. अनिलकुमार	7.00
सुन्दर रस (तृ. सं.)	लक्ष्मीनारायण लाल	4.00
रोशनी एक नदी है	लक्ष्मीकान्त वर्मा	7.50
घाटियाँ गूँजती हैं (तृ. सं.)	शिवप्रसाद सिंह	4.00
तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	5.00
भूमिजा	सर्वदानन्द	3.00
कहानी कैसे बनी ?	करतारसिंह दुग्गल	5.00

भारतीय ज्ञानपीठ
18, इंस्टीट्यूशनल एरिया
लोधी रोड, नई दिल्ली - 110 003